Chap - 2

अध्याय दो

कवि 'तरुण' और उनका गीत–काव्य

परिचयात्मक विश्लेषण

प्रथम किरण/धूपदीप/हिमांचला/आँधी और चाँदनी/अग्नि संगीत/ हम शिल्पी संत्रास के/'तरुण'–काव्य ग्रन्थावली/खूनी पुल पर से गुजरते हुए/चल पड़े हम तो/तारे, ओसकण और चिनगारियाँ/ यह लो मेरे हस्ताक्षर।

कवि रामेश्वर लाल खण्डेलवाल एक ऐसे अजेय योद्धा – साहित्यकार थे, जो जिन्दगी भर अपने परिवेश से अपने वातावरण से सतत् संघर्ष करते रहे। भौतिक जीवन में चाहे उन्होंने वैयक्तिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी, एक गरिमामय और गौरवपूर्ण अध्यापकीय दायित्व से जुडकर साहित्य की रचना–धर्मिता से संलग्न होकर उन्होंने अपनी ओजस्वी छवि अंकित कर ली थी। आर्थिक रूप से भी उन्हें कभी बहुत परेशान नहीं होना पडा, किन्तु समय के बदलाव ने तथा घटनाओ–दुर्घटनाओं के आघात ने उनके तन और मन पर जो अनन्त घाव रोप दिये थे, उनसे वे बहुत व्यथित हो गये थे। सम्पूर्ण जिन्दगी में अनन्त पीड़ाओं से जूझने वाला यह व्यक्ति चाहे तन से टूटकर तार–तार हो गया हो, किन्तु मन से वह कभी रुग्ण नहीं रहा। उसने अपने निजी कष्टों में अपने पाठकों या प्रेक्षकों को समभागी नहीं बनाया। वह तो अटूट और अजेय आस्था का कवि है। जीवन की विसंगतियों पर विजय प्राप्त करने का उसका वैचारिक अभियान निरन्तर अग्रसर होता रहा है। वह जब भी इन सासारिक विसंगतियों और भौतिक आघातों से पीडित होकर अपनी अन्तर्पीड़ा को व्यक्त भी करता है तो वहाँ भी उसका अजेय पौरुष सामने आ जाता है। कवि ने कहा भी है–

"रोने से तो दुख दूर नहीं होने का,
आँसू से पत्थर चूर नहीं होने का,
जीवन–भर चाहे तुम कुंकुम से पूजो–
काला काजल सिन्दूर नहीं होने का!"[1]

कवि ' तरुण ' एक कुशल गीतकार हैं, जिसमें जीवन के राग और रस उसके चतुर्दिक पारिभ्रमित होते रहते हैं। उसके गीतो में पीड़ा से आक्रान्त हृदय की आग का शमन करने के लिए चन्द्रमा की शुभ्र चाँदनी भी है और सुकुमार भावो के शीतल पवन–झपट्टे भी हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है कि जीवन की अनेक दुर्घटनाओ ने इस संवेदनशील रचनाकार को बहुत ही व्यथित कर दिया था, सबसे बडा आघात था उसके एकमात्र युवा–पुत्र अमित की अकाल–मृत्यु। वहाँ एक नीड बनाया जा रहा था, पति और पत्नी के मध्य मे एक सुकुमार शिशु किलकारियाँ भर रहा था। घर के आँगन में जैसे एक फूल का गमला खिलखिला कर हँसने लगा था, सुगन्ध से सराबोर हो गया था, सारा जीवन–वृत्त। ममता, करुणा, वात्सल्य, आत्मीयता आदि के पवित्र आत्मीय भाव इस कवि मे विस्तार प्राप्त कर रहे थे। छोटा–सा शिशु किशोरावस्था को प्राप्त होता है। उसकी किशोर–लीलाएँ आनन्दातिरेक से माँ–बाप को आह्लाद और उमंगों से भर देती है और फिर जब यह किशोर युवावस्था मे पदारपित होता है तो लगता है कि जैसे पिता का प्रौढ–रूप ही युवावस्था की विगत वीथियो की ओर सिहावलोकन कर रहा है। पुत्र की युवा आकाक्षाओ मे पिता की आह्लाद भावनाएँ समाविष्ट हो जाती हैं और वह स्वयं भी विगत यौवन के उन्माद को जैसे पुन अर्जित कर लेता है। अचानक युवा–पुत्र की आकस्मिक मृत्यु हो जाती है। आँगन के गमले का गुलाब अचानक ही मुरझा जाता है। सारा सुगन्धित परिवेश जैसे एक दमघोंट दुर्गन्ध मे व्याप्त हो जाता है। असह्य वेदनाओं का अनन्त अन्धकार जैसे कवि के गार्हस्थ गगन पर कालूष्य भरी लिपि से हस्ताक्षर करके सौभाग्य के क्षणों को दुर्भाग्य के अभिशाप में बदल देता है। कवि का गीतकार रोने लगता है, चीत्कार करने लगता है, क्रन्दन करने लगता है, किन्तु फिर वह अपनी टूटी हुई, हारी और थकी सहचरी को बाँहो का सम्बल प्रदान करके यही कहता है–

"संघर्ष कर , आहें न भर!
जीवन न फूलों की डगर!"[2]

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'उपचार', पृष्ठ 60
2 वही, 'सघर्ष कर', पृष्ठ 73.

वह बार–बार आश्वस्ति के सबल पर जीवन की नई डगर पर अग्रसर होता है और कहता है–

"यदि अस्त सूरज हो गया–
मेरा नहीं कुछ खो गया!
पथ–ज्योति देने को अभी, तारे निकलने शेष हैं।
विश्वास है मन में अमर।"[1]

कवि अपने सम्पूर्ण असह्य कष्टो को वज्राघाती क्लेशो को, अवसादो को, दर्दों को, पीडाओं को जैसे चबा डालता है। जैसे ये अवसाद उसके जुझारू व्यक्तित्व का भोज्य बन गये है, जैसे कवि ने संकल्पबद्ध होकर सामने उपस्थित सभी विकराल चुनौतियों को स्वीकार कर लिया है। वह कहता है –

"मैं प्रलय की आँधियों में से निकलता चाँद –
मेरा हास तो देखो!
कर न पायेगा कभी भी राहु मेरा ग्रास –
यह विश्वास तो देखो!"[2]

वैसे तो कवि का सम्पूर्ण जीवन राग और रस को ही समर्पित रहा है, किन्तु यह राग और रस अलग–अलग परिवेशों और परिस्थितियों में अपने अलग–अलग रंग बिखेरते रहे है। कवि ने अधिकांशतः पद्य–विद्या में गेय रचनाओं को ही प्राधान्य दिया है। उसके गीत उसके अन्तर्मन की निष्कपट पहचान है। अज्ञेय कहते है– ***"उनकी गीत रचनाएँ ही सबसे प्यारी लगी। उनमें एक मुग्ध भाव–प्रवणता है। ' तरुण ' जी के गीतों में कई ऐसे हैं जिन्हें फिर–फिर गुनगुनाने का मन करे, यह अपने आप में एक कसौटी है जिस पर फिर यह तर्क नहीं टिकता कि गीत की विधा अब एक पिछड़ी विधा हो गई है।"*** [1]

उनके गीतों में अनेक स्वर प्रमुखता के साथ उभरे हैं, जिनमें साहचर्य, एक्य, बन्धुत्व, उदारता, संवेदना, समर्पण, आस्था आदि के उद्भाव सर्वत्र बिखरे पडे है। डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त के शब्दो में– ***"आज हमें ऐसे काव्य की आवश्यकता नहीं जो पतनोन्मुख समाज को और त्वरित वेग से सर्वनाश की खाई में धकेल दे। ' तरुण ' जैसे कवियों की आशाप्रद वाणी और उद्‌बोधन गीत ही मानव–जाति के सम्बल बन सकते हैं।"*** [2]

इन्हीं भावों को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि – ***"हमारे समय में हिन्दी में ऐसे कवि संख्या में अधिक नहीं हैं जो गीति–रचना के क्षेत्र में वैसा उत्कृष्ट रचना–कौशल या गुणवत्ता प्राप्त कर सके हैं जैसी कि डॉ0 खण्डेलवाल ने अनायास ही प्राप्त कर ली है। फिर, जो कुछ उन्होंने उपलब्ध किया भी है वह भी इतनी सहजता और स्वाभाविकता से उनके पास बहता चला आया है मानों किसी गायनशील पक्षी को उसका अपना गान ही मिल गया हो। निश्चित है कि कवि ' तरुण ' काव्य–कल्पना के पंखों पर उड़कर देश और काल की सीमाओं को लाँघकर अमरों के आनन्दलोक में पहुँचकर ही रहेंगे, ठीक उसी तरह जिस तरह 'Ode to Nightingale' नामक अपनी कविता में अंग्रेजी कवि कीट्स (Keats)। वस्तुतः कोई कवि इससे अधिक की प्राप्ति की आशा या कामना अपने जीवन में और करेगा ही क्या? निरन्तर गायनशील चिर व्याकुल और तनावग्रस्त कवि ' तरुण ' जिसने जीते जी, अमृत और विष दोनों के घूँट पी लिए, की अन्तरात्मा बहुवर्णी सपनों और मोहक कल्पनाओं के आकाश में निरन्तर ऊपर ही ऊपर उड़ती–उठती चली गई, जब***

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'अमर विश्वास', पृष्ठ 163.
2 'आँधी और चाँदनी' 'मुक्तक', पृष्ठ 95

तक कि विषम स्थितियों के कारण नितान्त असहायता और भग्नाशा की स्थिति में वह आकाश से धरती पर धड़ाम से गिर ही न पड़ी हो! और यह बात हमें सब भावी युगों के लिए चिर स्मरणीय अंग्रेजी के एक और अग्रगण्य प्रतिभापुरुष गीतात्मा कवि शैले (Shelley) के उदाहरण की भी सहज याद दिला देती है।

गीतकार कवि ' तरुण ' भावी पीढ़ियों के द्वारा सदा ही विस्मय और स्तवन की भावना से अनुरागपूर्वक स्मरण किए जाते रहेंगे।" [3]

जब व्यक्ति अपने अन्तर्मन में अपनी अनुभूतियो के तहत संवेदना के स्तर पर भावुक होकर अपनी पीडाओ को उलीचता है, तब उसमे भी एक राग और रस के स्पर्श का अनुभव होता है। गीत, कवि की अन्तर्व्यथाओं को बडे ही प्रभावक ढंग से व्यक्त करने मे सक्षम हुए है, क्योकि कवि केवल संवेद्य स्वरों का सवाहक ही नही है बल्कि उसके अनुभूत कथ्य साधारणीकरण की सीमा तक प्रभावक भूमिका का निर्वाह करते है। गीत की रूप–रचना तीव्र और सघन अनुभूतियो पर आधारित रहती है। यहाँ प्रबन्धात्मक रचनाओं में कवि का ध्यान अनुभूतियो को उभारने वाले प्रसगो की व्यवस्थित योजना पर टिका रहता है, वहाँ गीत मे कवि स्वच्छन्द होकर और भावात्मक व्यग्रता से सलग्न होकर अपनी वात कहता है।

गीत में छन्द का बन्धन तो होता ही है, किन्तु जो रचनाकार अपने कथ्य को प्रस्तुत करने के लिए छन्दरचना को सहज रूप में आत्मस्थ कर लेते है, उनके लिए यह छन्दस अभियोजना बाधक न बनकर कवि के सहज रचनाधर्म मे समाविष्ट हो जाती है। इस प्रकार छन्दानुबन्धन की परिसीमाएँ रहते हुए भी कवि गीत–विधा मे बड़े ही सहज, सरल और सरस रूप में, अपने प्रभावक कथ्य को व्यक्त कर देता है। *"अनुभूति की तीव्रता ही गीत की गेयता का मूल स्रोत है। यों तो गीत में भी चिन्तन और कल्पना का समावेश रहता है, किन्तु प्रधानता भावावेग या राग–तत्त्व की ही रहती है। यह राग–तत्त्व (भावावेग) ही गीत में रागात्मक (संगीतात्मक) स्वरों में साकार होता है। इस प्रकार गीत का मूल स्वरूप ही रागात्मक है। गेयता गीत की नैसर्गिक विशेषता है। गीत मानव के दुःखात्मक या सुखात्मक भावावेग की संगीतमयी अभिव्यक्ति है। इसकी सारी शक्ति इसके राग–तत्त्व (भावावेग तथा संगीत) में निहित हैं।*

स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात के हिन्दी के गीतकारों में डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' का नाम विशेष गौरव और सम्मान के साथ लिया जाता है। सच तो यह है कि गीतों के अनुभूतिगत और शैल्पिक उत्कर्ष की दृष्टि से वे आधुनिक युग के प्रथम श्रेणी के गिने–चुने गीतकारों में परिगणित हैं। डॉ0 तरुण गीत–रचना में विशेष तृप्ति और आत्मगौरव का अनुभव करते हैं। वर्तमान वैज्ञानिक भौतिकतावादी युग में जिन्दगी बर्फ की चट्टान के समान जड़ताग्रस्त हो गई है। इस बर्फ की चट्टान के नीचे दबकर मानव का संगीत दम तोड़ रहा है। विज्ञान–प्रेरित और बौद्धिकता की प्रधानता के कारण संवेदना के नैसर्गिक स्रोत सूख गये हैं। इसलिए कविता पर गद्य हावी होता जा रहा है। रागरहित, गद्यात्मक प्रवाह से सरस गीतों की कैसे रक्षा की जाए — यही प्रसिद्ध गीतकार डॉ0 तरुण की दुश्चिन्ता का प्रमुख विषय है:—

"हो गई है जिन्दगी अब बर्फ की चट्टान—
हाय, दबकर रह गया इसमें मनुज का गान! —
आज मैं कवि, देख — यह कैसा खड़ा निरुपाय!
मैं मनुज के गीत को कैसे बचाँऊ हाय?" [4]

कवि इन गीतों के माध्यम से व्यक्ति के अन्तर्मन में पल्लवित आनन्दोत्सवों को तथा पीडाओं की कंटकावृत झाडियों

को रेखांकित करता हुआ, भावात्मक स्तर पर अपनी उदारवादी चेतना की उद्घोषणा करता है। वह मन के कालुष्य को भी उजागर करता है और उसे अनावृत भी करता है। कवि कहता है–

"आज गीत के कर–कमलों से
मानव–मन का है अनावरण!"[1]

वैसे तो कवि 'तरुण' के काव्य का मुख्य स्वर इन्ही बिखरे हुए स्वच्छन्द गीतो में मुखरित हुआ है, किन्तु फिर भी कवि ने अपनी गीत–यात्रा में अलग–अलग पडावों पर अपने विशिष्ट पद–चिह्न भी उत्कीर्ण किये हैं, यह अनुभव किया जा सकता है। कवि कहता है–

"आँधियों–सी उठ तनिक सोया हृदय झकझोर जाओ,
कुछ नई पीड़ा उठाओ , कुछ नई ज्वाला जगाओ,
मधुर मधुर की बूँद दो तुम, अश्रु दो तुम, आग दो तुम,
प्रेम की मुरली सुनाऊँ, वह अमर अनुराग दो तुम,
फूट निकले गीत– ऐसी टीस उपजाओ हृदय में।
प्रेरणे, आओ हृदय में।"[2]

जैसा कि अन्यान्य कवियो ने भी किया है, कवि ' तरुण ' न तो अपने आरोपित कष्टो से और आकस्मिक दुर्घटनाजन्य पीडाओं से पराजय स्वीकार करता है और न ही अपने कटकावृत मार्ग से पलायन करके सुविधाभोगी और निर्विघ्न राजमार्गों पर चलने की आकांक्षा व्यक्त करता है।

डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा का मन्तव्य है– *"उनकी रागात्मिका वृत्ति के संचार की दो ही दिशाएँ हैं– सुन्दर, विराट, भव्य और दिव्य रूपों के प्रति अति अनुरक्ति और भक्ति तथा विकृत रूपों–व्यापारों के प्रति अति वितृष्णा और विक्षोभ। वे अतितोष और अतिरोष के कवि हैं। तोष प्रवृत्ति और क्रिया का आधार है तथा रोष विरोध और प्रतिक्रिया का। उनकी इसी रोष–तोष मूलक द्वन्द्वात्मक दृष्टि से उनके काव्य की प्रवृत्तियाँ उदित हुई हैं। उनकी रोषमूलक अथवा प्रतिक्रिया–प्रेरित दृष्टि से निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ प्रसूत हुई हैं– 1. युगीन पीड़ा और संत्रास 2. विसंगति और व्यंग्य 3. आक्रोश और विद्रोह। उनकी तोषमूलक अथवा प्रवृत्तिपरक दृष्टि से निम्नलिखित प्रवृत्तियों का उदय हुआ है – 1. जीवनोल्लास, संघर्षचेतना और स्वातन्त्र्य भावना 2. प्रकृति–प्रेम 3. राष्ट्र, इतिहास और संस्कृति के प्रति प्रेम 4. ईश–प्रेम अथवा भक्ति–भावना 5. आध्यात्म और रहस्यानुभूति 6. प्रणय और श्रृंगार–भावना 7. मूल्यबोध और मानवतावादी जीवन–दर्शन।*

उपर्युक्त प्रवृतियों की दृष्टि से डॉ0 तरुण के गीत–काव्य का संक्षिप्त पर्यालोचन करने से पूर्व उनकी मानसिकता की निर्मिति के प्रेरणा–स्त्रोतों पर प्रकाश डालना प्रासंगिक होगा। मूलतः डॉ0 तरुण वैदिक संहिताओं, उपनिषदों, ब्रह्मसूत्र, गीता आदि में निरूपित वैदिक चिन्तन और अद्वैत दर्शन से प्रेरित रहे हैं। शैव दर्शन के समरसतावाद का भी उन पर प्रभाव है। तुलसी, सूर, प्रसाद आदि हिन्दी कवियों के भी वे गम्भीर अध्येता और प्रशंसक रहे हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र की मुक्ति–चेतना और रहस्य–भावना ने भी उन्हें आकर्षित किया है। भारतीय संस्कृति के उदात्त तत्त्व उनकी मानसिकता में गहराई से अनुस्यूत रहे हैं। प्रकृति के कोमल–कठोर रूपों ने उन्हें अभिभूत किया है। व्यक्तिगत जीवन के अनेक भावों और अभावों ने

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'वसन्त', पृष्ठ 189
2 वही, 'प्रेरणे, आओ हृदय में', पृष्ठ 61

उनकी मानसिकता को कभी अभिभूत तो कभी आन्दोलित और आहत किया है। अनेक यात्राओं ने उनके सौन्दर्य–बोध और मूल्य–बोध को समृद्ध किया है। कुल मिलाकर डॉ0 तरुण की मानसिकता प्रवृत्तिपरक, आस्थावादी, आस्तिक, आशावादी और स्वच्छदतामयी है। आस्था, मुक्ति, उल्लास के बाधित होने पर ही उन्हें पीड़ा पहुँचती है और वे आक्रोश और विद्रोह से आन्दोलित हो उठते हैं। वे प्रकृति और संस्कृति के कवि हैं, विकृति के वे प्रबल विरोधी हैं। इस विकृति–विरोध में भी उनका संस्कृति–प्रेम ही व्यक्त हुआ है।"[5]

कवि ' तरुण ' के गीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित है, जो क्रमिक रूप से उनकी गीतयात्रा के विभिन्न पडावों को दर्शाते है। इनमें 'प्रथम किरण', 'धूपदीप', 'हिमांचला', 'ऑधी और चॉदनी' तथा 'हम शिल्पी संत्रास' के– काव्य–सग्रह प्रकाशित हो चुके है। 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' मे ये सब एक ही स्थान पर सपादित होकर प्रकाशित भी हो चुके हैं।

"युगीन यथार्थ की विद्रूपताओं की टकराहट से उपजी तीखी अनुभूतियाँ अधिकांशतः उनकी वृतगन्धी गद्यात्मक रचनाओं में ही अधिक उभरी हैं। किन्तु फिर भी आधुनिकतम विषय भौतिक परिवेश की विसंगतियों से उत्पन्न पीड़ा, संत्रास, आक्रोश और विद्रोह की प्रभावशाली अभिव्यक्ति उनके कई गीतों में मिलती है। 'मैं बनवासी होता' शीर्षक प्रसिद्ध गीत में मानव–मन के उल्लास और आनन्द के सहज स्रोतों को सुखाने वाली आज की सत्त्वभक्षी, जीवनग्रासी, छद्मवेशी सभ्यता के प्रति गहरा अवसाद और आक्रोश व्यक्त करते हुए डॉ0 तरुण ने युगीन यथार्थ की विषमताओं को बड़े मार्मिक रूप में व्यक्त किया है:–

"कुसुम–कीट–सा हाय, सभ्यता ने मुझको चर डाला,
मन पर जाला, मुख पर ताला और हँसी पर पाला!
मैं प्रकाश का अमर पुत्र हा! मुक्ति–लोक का प्राणी–
आज रह गया – भूल उड़ाने मुक्त, रसीली वाणी–
दूध–भात के लिए स्वर्ण–पिंजरे का बनकर तोता।
मैं वनवासी होता।"[6]

कवि स्वय को समाज का एक जागरूक प्रहरी स्वीकारता है तथा अपने परिवेश मे व्याप्त सम्पूर्ण विसगतियो और विषाक्त असगतियो से रूबरू होकर सघर्ष के लिए तैयार रहता है। कवि बहुत पहले ही उदघोषित कर चुका है कि –

"हम हैं अधीर, चिर–मरणातुर,
अमर सपनों वाले –
हम हैं रे – क्षण–भंगुर!
अरे, हम हैं बघनखे, रण–बाँकरे –
काचे धागे की – फकत एक जोड़ी साँस के।
आखिर हम आदमी ही तो हैं–
हाड़–मांस के।"[1]

कवि ने अपने अन्तर्मन की गहराइयों को उलीचते हुए प्रसन्न और अवसाद दोनों ही भावों को व्यक्त किया है। वह कहता है –

"शिशिर–साँझ के मेघाडम्बरों से आच्छादित गगन–सा–
आज मेरा मन भारी है!

---

1 'हम शिल्पी संत्रास के' 'हम शिल्पी सत्रास के', पृष्ठ 19

हरियाले खुले मैदानों में–
नदी कछार पर टनों पवन में फरफराती–सूखती
नील मलमली साड़ी–जैसे तरल–मृदुल कण्ठ से
अब मैं जीवन–भर गा न सकूंगा।"[1]

कवि जब स्वयं को पंचतत्त्वों के सयोजन से निर्मित एक अत्यन्त संवेदनशील व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है, तब लगता है जैसे वह इन सभी प्राकृतिक तत्त्वों में अपने विशिष्ट प्रदान की शोध कर रहा है, जैसे –

"धरती की मुझमें भर दी गई माटी और सुगन्ध,
आकाश की मुक्तता और शुद्ध आनन्द;
जल की शीतलता–पावित्र्य,
अग्नि का तेज, दीप्ति–चैतन्य,
पवन का भर दिया गया–प्राण,
अहा, यह तो था सचमुच मेरी चेतना का सम्मान।

इन सबके सुखद योग से तो
फूटना ही था मुझमें– मेरे जीवन में – केवल
एक मंजुल , स्निग्ध, मधुर, परम रसमय गीत–
पर बात क्यों पड़ गई – विपरीत?"[2]

कवि ' तरुण ' एक ऐसा हठधर्मी कवि है, जो अपनी समस्त विषमताओ से परे अपने किसी अटल निश्चय पर खड़ा है और समय के तूफान या परिस्थितियों की ऑधियॉ जिसे डिगा नही पाई है। कवि 'तरुण' की गीत–यात्रा को समझने और सोचने के लिए अपेक्षित है कि उनकी काव्य–कृतियो का पृथक–पृथक अवलोकन किया जाये।

---

1 'ऑंधी और चॉंदनी' 'मै गा न सकूँगा', पृष्ठ 3
2 'हम शिल्पी सत्रास के' 'किसका दोष?', पृष्ठ 83

प्रथम किरण

डॉ0 'तरुण' का पहला काव्य सग्रह है– "प्रथम किरण", जो सन् 1948 मे प्रकाशित हुआ। 'तरुण' की काव्य–साधना का यह पहला चरण स्वच्छन्दतावादी भावभूमि का है। वह प्रकृति के प्रसन्न चित्रों में तन्मय होते रहे हैं और उनकी सौन्दर्योपासना कल्पना के घरौदे बनाती रही है, फिर भी उनकी काव्य–साधना जीवन की मधुरतम अभिव्यक्ति के साथ आदमी के पौरुष को रेखांकित करती रही है। 'प्रथम किरण' मे कवि प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ कल्पना के पंखो के सहारे स्वर्णिम क्षितिज पर अमर प्रेम के गीत गाता है। वह ग्रामीण सुषमा और प्रकृति के सौन्दर्य मे डूबकर कही–कही दार्शनिक भूमि का भी स्पर्श करने लगता है। भीतर का आत्मविश्वास उसे चंचल और अस्वस्थ नहीं बनने देता। बहुत कुछ 'पन्त' के प्रकृतिचित्रण से 'तरुण' की कविता साम्य प्रस्तुत करती है। उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति निरन्तर कल्पना–छवियों को निहारती है और जीवन के सुख–दुःख को दार्शनिक भाव से ग्रहण करती है। वह अपने साधना–पथ में लहरो की तरह संघर्ष करते हुए अनन्त प्रकाश के गीत गाना चाहते हैं क्योंकि साधना का मार्ग अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है और विध्वंस से निर्माण की ओर।

इस संग्रह में कुल 42 कविताएं हैं। प्रत्येक कविता की अपनी विशेषता है। विषयों की विविधता के कारण पाठक के लिए आरम्भ से अन्त तक एक ताजगी बनी रहती है। अपनी कविताओं के सम्बन्ध में कवि 'तरुण' ने अपने 'निवेदन' में लिखा है–

"ये मेरे बाल–प्रयत्न हैं। सिन्धुतट पर बैठकर अपनी कल्पना के अनुकूल मैंने ये रेत के घरौंदे बनाए हैं– जानते हुए भी कि गरजती हुई लहरों के पेट में ये समा जाएगें। पर निर्माण में ही मनुष्य अमर है।" [7]

मानव इस सृष्टि का अंग है और प्रकृति की क्रोड में ही उसका पोषण होता है। मनुष्य जब इस संसार में पहले पहल अपनी ऑख खोलता है तो वह उसी क्षण अपने चारो ओर फैले प्राकृतिक परिवेश को कौतूहल वश देखने लगता है। 'तरुण' का जन्म–स्थान– भीलवाड़ा (राजस्थान) है, जहॉ प्रकृति के रम्य, हरे–भरे रूप के साथ उसका रौद्र, कुरूप और कठोर स्वरूप भी देखने को मिलता है। भीलवाडा (मेवाड) काफी हरा–भरा भू–भाग है। इसके अतिरिक्त बाल्यकाल में 'तरुण' मारवाड (मरुस्थल) में भी बडे भाई के साथ रेलवे स्टेशनो पर रहे। इस प्रकार बचपन के दोनो अनुभवों और दृष्टियों का मेल उनके प्रकृति–निरीक्षण और अनुभव के मूल में आरम्भ से ही रहा है। कवि ने प्रकृति को अपनी काव्याभिव्यक्ति का प्रमुख सशक्त माध्यम बनाया है। प्रकृति का व्यापक परिवेश सब कवि की अभिव्यक्ति का विषय या माध्यम रहे हैं।

कवि ने 'प्रकृति की गोद में' शीर्षक लम्बी कविता में गंगा के हरे–भरे मैदान मे फैले व्यापक प्राकृतिक परिवेश को अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से पूरी रागात्मकता के साथ जी भरकर देखा है। अगहन की मनोहर धूप में गगन में स्वच्छन्द–विहार करते हुए पक्षी, मैदानों मे क्रीडारत उन्मुक्त बच्चे, हरे–भरे खेत, नीला आकाश, फूलों पर धूप में रमती तितलियॉ – सब उसे हॅसते–से , उल्लासपूर्ण एवं प्रसन्न लगते है। पगडंडी पर होकर चलते समय अरहर के पौधों और उनकी प्रतिच्छाया से धूप मे बनी हुई जालियों को देख कवि का हृदय विमुग्ध हो उठता है–

"पश्चिम दिशि में दूरी तक है सरिता–सी
रजतोज्ज्वल विस्तृत कास–राशि लहराती–
जिसके आगे धूमिल पादप–पुंजों में

दिखतीं, ओझल–सी, लोचन–दृष्टि थकाती–
दूरस्थ विश्वविद्यालय के भवनों की
सूर्य्यातम–चुम्बित स्वर्ण–कलश–मुकुटित, नव
काषाय–गुम्बदों की लघु–लघु आकृतियाँ
स्वप्निल दिगन्त–पलकों में सोई नीरव।"[1]

प्रभातकालीन लालिमापूर्ण दृश्यों को देखकर कवि भाव–विभोर हो उठता है। अरुणोदय की लालिमा उसे ऐसी मालूम होती है मानों नव–माणिक सरीखी मादक मदिरा की प्याली ही प्राची में छलक पडी हो। युगों–युगों से उसके इस मादक रस का सागर अभी समाप्त नही हुआ है। यह सोचकर कवि विस्मय–विमुग्ध हो उठता है। पक्षियों की चहक के साथ डाली–डाली झूम उठती है। कलियॉ तो मानो सुकुमार मादक रूपसियो की भॉति घूँघट खोलकर मन्द पवन मे डोलने–सी लगती है–

"कलियाँ घूंघट खोल रही हैं,
मन्द पवन में डोल रही हैं,
चहक उड़ चले विहग नीड़ से, झूम उठी है डाली–डाली,
फूट गई ऊषा की लाली।"[2]

'सावन' शीर्षक कविता में सावन मास का प्राकृतिक वातावरण बडे ही सहज रूप से सजीव साकार हुआ है। कवि 'तरुण' प्रकृति को एक पर्यटक की भॉति कौतुहल और बडी तन्मयता से देखता है। रिमझिम–रिमझिम हवा चलना, मोर पपीहों की आवाज से वन–स्थली का गूँजना आदि–आदि सावन मास की समग्र प्राकृतिक छटा को हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देते है–

"घुमड़ रहे घन काले–काले, ठंडी–ठंडी हवा चली,
मोर,पपीहे बोल बोल कर गुँजा रहे हैं वनस्थली,
चीर बादलों को चाँदी–सी चमक रही चमचम बिजली,
खेतों में गा रहे कृषकगण देहाती स्वर में कजली,
प्राणों में उल्लास भर गया, नदियों में जल उमड़ाया,
रिमझिम रिमझिम बरस रहा जल, हरा–भरा सावन आया।"[3]

बसन्त–ऋतु का प्रभातकालीन दृश्य कवि के मन में इतने उल्लास और उत्साह का संचार कर देता है कि वह आत्म स्वातन्त्र्य की भावना से ओत–प्रोत हो उठता है। असीम पथ में पक्षी बनकर उडने के लिए उसे अपना शरीर भी बन्धन–सा प्रतीत होता है। ऐसे आह्लादकारी दृश्यो से मनुष्य के मन में एक नई आशा का संचार होता है, चरणो मे नई गति आ जाती है तथा हृदय में जीवन के शत–शत बन्धनो की शिथिलता का आभास होता है–

"आज हृदय के शत्–शत् बन्धन
टूट–टूट पड़ रहे शिथिल बन!
चरणों में गति, मन में आशा,
जीवन में आया है जीवन!
फूल उठी छाती उमंग में–

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रकृति की गोद में', पृष्ठ 173
2 वही, 'प्रभात', पृष्ठ 197
3 वही, 'सावन', पृष्ठ 184

फूली हो जैसे सन्ध्या रे!
नव प्रभात आया, आया रे!" [1]

अत्याचारी शासक के आतंक की भॉति मरुस्थल मे सूर्यताप से भू–मण्डल तप्त हो जाता है– इसका वर्णन 'मरु का चन्द्रोदय' शीर्षक कविता मे बडे सजीव रूप मे देखने को मिलता है। मरुस्थल में चन्द्रमा वेदना से पीडित, विचलित जग को अपने कोमल आलिंगन में भरता–सा प्रतीत होता है –

"वह कौन ? चूमता जग को अमृतमय चन्द्र–अधर से–
करुणानिधान–सा आया चुपचाप उतर अम्बर से ?
जो विश्व–वेदना से हो पीड़ित, विचलित, अति विह्वल –
आलिंगन में जगती को भरता–सा आया, कोमल!" [2]

'ओस–कण' नामक कविता में वर्षा, ऑधी और शीत में पवित्र रहने वाले ओस–कण विश्व को पुनीत प्रकाश, रूप, आभा, शीतलता तथा हास बॉटकर सूर्य की किरणो के स्वर्ग–विमानों पर चढकर स्वर्ग जाते हुए से लगते हैं। यहॉ कवि की कल्पना की विराटता तथा उसका जीवन के प्रति विशुद्ध दृष्टिकोण भी व्यजित होता है–

मुक्त अम्बर–तल सुन्दर वास,
स्वस्थ तन, उज्ज्वल मन, शुचि श्वास!
विश्व को बॉंट पुनीत प्रकाश–
रूप, आभा, शीतलता, हास–
ज्योति में हो जाते ये लीन!
खेल जीवन का खेल नवीन!" [3]

हरी–घास की कोमलता, मधुरता तथा सरलता सबका मन मोह लेती है। कवि अपने ही मन के रस से जीवन को विकसित करने की कला को सीखने के लिए हरी घास से मनुहार करता है। हरी घास के रूप मे प्रकृति के प्रति कवि का गहरा अनुराग 'हरी घास' शीर्षक कविता मे अत्यन्त उत्कृष्ट रूप मे व्यजित हुआ है–

"तू ओढ़ा करती है सुन्दर,
तारों वाला जगमग अम्बर,
झरनों का सुनती कलकल स्वर,
तेरी हरियाली से कितने कंठो में भर आती मिठास!
ए, शैल–तटी की हरी घास।
तू मुझको निज हरियाली दे,
अपनी आभा छविशाली दे,
मन की भाषा रसवाली दे,
तू सिखा मुझे–कैसे करना मन के रस से जीवन–विकास!
ए, शैल–तटी की हरी घास।" [4]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'वसन्त–प्रभात', पृष्ठ 191
2 वही, 'मरु का चन्द्रोदय', पृष्ठ 196
3 वही, 'ओस–कण', पृष्ठ 198
4 वही, 'हरी घास', पृष्ठ 182

'एकान्त क्षणो' मे शीर्षक कविता मे कवि के प्रकृति–प्रेम का अच्छा परिचय मिलता है। रात्रि में ग्राम और उसके आस–पास फैले खेतों, चन्द्रमा, तारे, श्रम–श्रान्त–कृषक, पगडण्डी पर पथिको का आवागमन बन्द हो जाना, गन्ने के खेतों पर से होकर आता हुआ देहाती रागिनी का स्वर आदि– कवि के प्राणों को सहला देते हैं–

"गन्ने के खेतों पर से हो एक रागिनी देहाती,
किसी कंठ से फूट आ रही है प्राणों को सिहराती,
इधर–उधर हैं दीन घरों में म्लान दीप टिमटिमा रहे,
दूरी पर हैं श्वान भूँकते, तम की काया कँप जाती।" [1]

निरन्तर अन्याय और शोषण की शिकार ग्रामीण जनता, विशेषकर श्रमजीवी ग्रामीणों की करुण स्थिति को देख प्रकृति भी आर्द्र हो उठती है। कवि को लगता है कि चन्द्रमा भी इन्ही शोषितो के ऊपर अपनी करुणा किरणे बरसाने के लिए ही आया है–

"अन्यायों की इस धरती का
अवलोकन करके यह हिमकर–
शोषित दुखियों पर बरसाने
आया निज करुणा का सागर।" [2]

'गॉव की सॉझ' शीर्षक कविता में प्रकृति के अंचल में बसे हुए गांव की सांयकालीन गतिविधियों का बडा ही रोचक और सजीव चित्रण हुआ है। कच्चे फल खाकर दिनभर खेलते हुए अर्धनग्न बच्चों का अपनी झोंपड़ियो में लौटना, अमरूदों और बेरों के कुंजो मे पक्षियों का कलरव, हरी क्यारियों से धनिए की मनोहर गन्ध इत्यादि कवि के प्रकृति–प्रेम को ही रेखांकित करते है। इस प्रकृति प्रेम के बीच दीन–करुण व दरिद्र, उपेक्षित मानवता के बड़े ही हृदय–विदारक व सहानुभूतिप्रेरक दृश्य उपस्थित होते हैं–

"लौट रहे निज झोंपड़ियों को अर्ध–नग्न दीनों के बच्चे–
खेल रहे थे दिन भर जो अति सुखद धूप में खा फल कच्चे।
निकट कूप पर मुक्त कंठ से चहक रही है चिड़िया काली!
लौट रही पनघट से गगरी भर कर ग्राम–वधू मतवाली।" [3]

टेढी–मेढी पगडडी पर अचल से समीर लहराती एवं मीठी देहाती रागिनियों से सारे वातावरण को मधुर बनाती हुई भोली ग्रामीणाओ का यह सौन्दर्य और यौवन–रस से पूरित यौवन सचमुच में हृदयकारी है, ऑखों में समा लेने की वस्तु है। इसी पृष्ठभूमि मे पला ग्रामीण नारी के यौवन का एक रूपाकन देखते ही बनता है–

"विद्युत्युत ध्वनिकारी मंजुल
कजरारे जलदों के नीचे,
निश्चित ग्राम–वधुएँ भोली
टेढ़ी–मेढ़ी पगडंडी से–
जा रही घास का गट्ठर ले
अंचल समीर से लहराती
गाती जाती मृदु कंठो से

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'एकान्त क्षणो मे', पृष्ठ 146
2 वही, 'गॉव की ओर', पृष्ठ 216
3 वही, 'गॉव की सॉझ', पृष्ठ 217

रागिनियाँ मीठी देहाती–
काँसे के आभूषण पहने
ओढ़नी छींट की ओढ़ नवल,
दृग चपल, प्रणय–रस से पूरित,
यौवन–रस पूरित वक्ष स्थल।" [1]

जीवन मे पहली बार जून सन् 1944 मे मद्रास मे समुद्र–दर्शन करने पर समुद्र के दिगन्त–व्यापी अनन्त विस्तार को देखते हुए कवि विस्मय–विमुग्ध और ठगा–सा रह जाता है। प्रकृति के इस नवीन आयाम को देखकर तो कवि का तन मन रोमाचित ही हो उठता है–

"ए श्याम–नील गर्जनकारी, चंचल दिगन्त–व्यापी समुद्र!
इस निर्जन में क्यों गरज रहे धारण कर ऐसा रूप रूद्र!
इस महानील नभ के नीचे निशि–दिन तुम हे जलनिधि अपार,
क्यों करते हाहाकार विपुल, अन्तर्पीड़ा का लिये भार ?" [2]

'बच्चन' ने तो 'तरुण' की इस प्रकार की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओं प्रभावित होकर कहा है– ***"उनकी (तरुण की) कविताओं के देखकर सहसा वर्ड्सवर्थ की यह पंक्ति याद आ जाती है–***

'The light that was never on sea or land.' [8]

'तरुण' के काव्य में देशप्रेम के सच्चे स्वरूप के दर्शन होते है। देश के भूत, भविष्य और वर्तमान से उनका गहरा परिचय है। खेतों, खलिहानों, पेड़–पौधो, नदी–पोखरों, गली–पगडंडियो के साथ ही साथ झोपडियों में पलते दुख–दर्द, करुणा और ममता को उन्होंने अपना बना लिया है। परिणामत उनके काव्य मे देश–प्रेम की संवेदना की पूर्ण एवं समय अभिव्यक्ति हुई हैं।

'तरुण' के प्रथम काव्य–सग्रह यानि 'प्रथम–किरण' की प्रथम कविता देश को ही समर्पित है। यदि यह कहे कि उनकी काव्य–यात्रा देश–प्रेम से ही प्रारम्भ हुई है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्वाधीनता के उषाकाल में लिखी गई यह रचना कवि के राष्ट्रीय चिन्तन की आधारशिला हैं। भारत महान देश है, महिमामय है, इसलिए नहीं कि वह विशाल भूखण्ड है वरन् इसलिए कि वह ज्ञान की परम्परा का, सभ्यता और संस्कृति का आदि संस्थापक है, आर्य संस्कृति का मुकुट है, धर्म और साहित्य, कला और संगीत का आदि पुरस्कर्ता है–

"महिमामय है देश हमारा।
प्रथम सभ्यता का उन्नायक, युग–युग की महिमा से मण्डित,
शुद्ध ज्ञान का आदि स्रोत यह, महादेश प्राचीन अखंडित,
भव्य आर्य–संस्कृति का स्वामी, सृष्टि मुकुट जन–मन का प्यारा।"

x x x x

सुख से जीओ और जीने दो– यह उदार भावना यही हैं,
यहां आत्मबल पूज्य, किसी को पशुबल में विश्वास नहीं हैं।
तलवारों से नहीं, जगत पर पाई विजय प्रेम के द्वारा।" [3]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'पावस–श्री', पृष्ठ 187
2 वही, 'शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न', पृष्ठ 202
3 वही, 'राष्ट्रगीत', पृष्ठ 317

"इस देश की जलवायु, उसका इतिहास, उसकी पूजा और उसकी वन्दना से रामेश्वर का हृदय भरा हुआ है।" [9]– से राष्ट्र प्रेम के अमर गायक राष्ट्रकवि माखन लाल चतुर्वेदी की कवि के विषय मे व्यक्त की गई यह धारणा 'तरुण' के काव्य की सही व्याख्या प्रस्तुत करती है।

इस सम्बन्ध मे कवि की जीवन–दृष्टि व सस्कार–विषयक अपनी मान्यता को 'तरुण' ने अपने इस काव्य–सग्रह प्रथम किरण में इस प्रकार स्पष्ट किया है– *"सच्ची काव्य–साधना प्रकाशपूर्ण, दिव्य, उच्चगामी निर्मल और पौरुषवान जीवन की ओर ले जाने में पूर्ण समर्थ हैं। यदि मैं अपने पथ पर आगे चलकर कभी ऐसे जीवन का दर्शन कर सका और अपनी आन्तरिक सौन्दर्य–सृष्टि को बाहर व्यक्त कर सका तो अपने काव्य–जीवन की सफलता समझूँगा।"* [10]

राष्ट्र के गौरवशाली अतीत , उसकी भव्य वैदिक–युगीन सास्कृतिक विरासत तथा विश्व को उसके प्रदेय के प्रति तथा सूर्य, चन्द्रमा, तारे, सागर, नदियॉं, पशु–पक्षी , धर्म, शिल्प, साहित्य तथा कला के प्रति गहरा अनुराग एवं श्रद्धा उनकी कविताओं में मुखरित हुए है। इसीलिए उनके मानस में भव्य गगा–तट के उस पार काशी मे विश्वनाथ का मन्दिर और उसकी घण्टा–ध्वनि उसे आकर्षित करती है–

"अहा भव्य थे गंगातट के वे मधुमय अरुणोदय,
सुन्दर थे सुन्दर, वसुधा पर वे प्रकाश के अभिनय।
x x x x
दल–सम्पन्न हरित वृक्षों पर गाते विहग प्रभाती,
कभी विहग–माला गंगा के नभ पर हो उड़ जाती।
आती पावन विश्वनाथ के मन्दिर की दूरस्थित–
श्रवण–सुखद मंजुल घंटा–ध्वनि करती है अंबर गुंजित।
x x x x
गंगा का सुन्दर प्रदेश वह लिए रूप–धन अपना–
आज बना मेरे दृग में स्वर्णिम प्रकाश का सपना।" [1]

'तरुण' के पास तारुण्य की तरलता से आपूरित हृदय है जो प्रेम की उर्मिल तरंगो से तरगामित है– प्रेम जो दिव्यता की आधारशिला है, सृष्टि का महत् आकर्षण है और कल्याण की भूमिका है। इस विराट, व्यापक एवं उदात्त भूमि पर कवि ने प्रेम की महत्ता को स्वीकार किया है। उसके काव्य में प्रेम के इसी उदात्त एवं मंगलमय रूप के दर्शन होते हैं। कवि प्रेम को आत्मा की पवित्रता के साथ ही व्यष्टि और समष्टि के कल्याण की साधना भी मानता है। प्रेम इस लोक की आनन्द–साधना और उस लोक की मुक्ति साधना का एक अमरतम साधन अपने सरल मन मे प्रेम की इसी शक्ति का प्रकाश लेकर कवि मुखर हो उठा है–

"निज प्रेमपूर्ण उज्ज्वल मन का
पावन प्रकाश भू–मण्डल पर–
जन–जन तक फैलाने के हित
यह जीवन है सुन्दर अवसर।" [2]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'गगा–तट का स्वप्न', पृष्ठ 199–201

2 वही, 'जीवन', पृष्ठ 107

संसार की सारी पीड़ाओं से दूर कंटीली झाडियो और हवाओं में भी प्रेम का परम पवित्र आनन्द भोग करने वाले पंछी कवि की चेतना को एक क्षण में ही बॉध लेते हैं। हिसा–पीडित, प्यार–शून्य जगत को इस परम पवित्र प्रेमानुभूति का रसपान कराने का आकाक्षी कवि उस आलिगनबद्ध पंछी–युगल से करुण याचना कर उठता है–

"हिसंक जग में जाकर तुम
यह प्रेम दिखाओं, पंछी।
स्वर्गीय प्रेम का मंजुल
संदेश सुनाओं, पंछी।" [1]

स्वर्गीय प्रेम का यह मंगलमय संदेश केवल याचना ही नहीं है वरन् भाव का वह विस्तार है जो अपने ऑचल की छाया में जड और चेतन के भेद को मिटाकर सृष्टि की एकात्मकता की घोषणा करता है। प्रेम की धरती पर जड़ और चेतन अपना अस्तित्त्व खोकर एक नवीन रस–लोक की सृष्टि करते है एक नवीन भाव का जागरण कराते हैं। प्रेम की इस जागरण–बेला में जड़ और चेतन दोनों पुलक कर अम्बरव्यापी मनोहर गान गा उठने को मचल उठते है–

"आज सकल जड़ चेतन मिलकर
हर्षित हो गा रहे पुलक कर–
विश्व प्रेम, आशा, उमंग का
अम्बर व्यापी गान मनोहर।" [2]

वास्तव मे प्रेम वह निर्मल अनुभूति है जिसे काल की कठोर शक्ति भी झुका नहीं पाती। सब कुछ मरखप कर मिट जाता है पर प्रेमानुभूति नहीं, वह युगों तक प्राणों मे मधुर वीणा की तरह गूँजती रहती है। सृष्टि के एक–एक कण को दिव्य बना देने वाली यह मधुर साधना बिना किसी प्रयास के मानव–हृदय को भक्ति की ओर खींच लेती जाती है। 'तरुण' के काव्य में इस भावना के भी स्पष्ट दर्शन किए जा सकते है–

"जिसने स्वर्ण–विहान किया है,
एक और दिन दान दिया है,
निखिल चराचर का वह स्वामी है रे कितना वैभव शाली!" [3]

"प्रेम की अनुभूति से ही आत्मा का उन्मीलन होता है और आनन्द–कला छिटकती है। निर्मल प्रेम की अनुभूति एक ऐसी व्यापक, विराट्, शक्तिशाली अनुभूति है कि उससे अन्तःकरण में आत्मा का तत्काल अनुभव होता है, जीवन और प्रकृति का सम्पूर्ण रहस्य तत्काल समझ में आ जाता है और यह अनुभव होता है कि चराचर जगत के समस्त पदार्थ एक ही दिव्य सत्ता में 'सूत्रे मणिगणा इव', पिरोये हुए है। इस अनुभूति के पूर्व सब कुछ निर्जीव, आनन्द रहित व जड़ है और इस अनुभूति के होते ही सब कुछ दिव्य, प्रफुल्लित , आलोकमय, जागृत और सद्य । इस अनुभूति से ही प्राणी प्रकृति के बंधनों से मुक्त होता है और पवित्र होकर देह और चित्त से ऊपर उठकर अपनी आत्मा आनन्दमय स्वरूप में लीन हो जाता है।" [1]

'अभिलाषा' शीर्षक कविता मे कवि की यह अभिलाषा है कि उसके सुख का विश्व–व्यापी विस्तार हो। उसके मन के असीम सुख की सार्थकता केवल उसी अवस्था मे उसे स्वीकार्य हो सकती है, जब सम्पूर्ण पृथ्वी पर घर–घर में जन–जन तक फैल

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'दो चिड़ियॉं', पृष्ठ 99
2 वही, 'वसन्त–प्रभात', पृष्ठ 190
3 वही, 'प्रभात', पृष्ठ 197

जायेगा। मानव प्रेम की उच्च एव उदात्त भावना से परिपूर्ण यह कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है–

"मेरे मन का सुख असीम यह फैले इस धरती पर घर–घर!
जल–तरंग उठ फैल उमड़ती, सरिता के विस्तृत समतल पर,

x x x x

आत्म–प्रकाशन कर व्यापक सब होते हैं दिन–रात निरन्तर;
पहुँच–पहुँच मानव–प्राणों तक मेरा सुख भी हो उजागर!" [1]

एक अन्य कविता 'खोज' मे भी कवि का मानव–प्रेम अत्यन्त स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुआ है। कवि किसी ऐसे तत्त्व की खोज कर रहा है, जो इस संसार के सब प्राणियों के दुःख–दर्द, और जन्म–मरण, पीड़ा–क्रन्दन, बर्बरता–नाश आदि व्याधियों को समाप्त करके सम्पूर्ण प्राणि–मात्र के ऊपर शाश्वत सुख की वर्षा करने में सक्षम हो। अव्यक्त व्यथा के भार से जो मूर्छित होकर गिर पड़े हैं, उनके लिए एक अलौकिक संजीवन–रस तथा छविविहीन मुख–मण्डलों को पुन: स्वर्णाभा की दमक प्रदान करने के लिए कवि चिर प्रकाश की किसी अमर किरण की तलाश में है–

"जिसके प्रकाश में मानस का
कटुतम बन्धन सब खुल जावे,
जिसकी स्वर्गिक स्वर्णाभा से
जीवन का सब तम धुल जावे," [2]

कवि ने संवेदना के धरातल पर परमसता से एकात्म स्थापित करके यह अनुभव प्राप्त कर लिया है कि वह उससे भिन्न नहीं है। 'अनुभूति' शीर्षक कविता मे कवि प्रभु की इस विराट सृष्टि को देखकर विस्मय–विमुग्ध होता है। जो ईश्वर इस चर–अचर सृष्टि में विश्व–प्राण वन कर डोल रहा है, सूर्य,चन्द्रमा, पृथ्वी, आकाश, सागर आदि जिस त्रिभुवनपति की महिमा का दिन–रात निरन्तर यशोगान कर रहे है– उस परब्रह्म का दो क्षण के लिए, अपना दम्भ त्याग कर रोमाचित तन–मन से चिन्तन नही किया और न ही याचक बनकर अपनी झोली फैला, उससे कुछ मॉगा तो कवि को अपना जीवन दरिद्रतापूर्ण ही लगता है–

"जिस त्रिभुवनपति की महिमा का
यशोगान गा रहे निरन्तर–
ज्योतिर्मय के सूर्य, चन्द्रमा
युग–युग से दिन रात भ्रमण कर,
गहन नील इस महाशून्य में
गूँज रहा जिसका शाश्वत स्वर,
विश्व–प्राण वन डोल रहा है
मधुर पवन में जो अजरामर–

x x x x

जो इस भूमण्डल को निशि–दिन
देता है आलोक चिरन्तन,
उस ज्यतिर्मय के प्रकाश का–

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'अभिलाषा', पृष्ठ 254
2 वही, खोज', पृष्ठ 255

मैं दरिद्र! कब करता याचन!
चिर दरिद्र है रे, यह जीवन!"[1]

'मेरा अस्तित्व' शीर्षक कविता में कवि का परमसत्ता के प्रति विशेष प्रेम व्यंजित होता है। ऐसा लगता है कि या तो उसने परमसत्ता के साथ समात्म होने का अनुभव प्राप्त कर लिया है अथवा उसे अपने भीतर ही परमात्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। कवि स्वयं को जन्म का आदि–स्त्रोत तथा चिर प्रकाश की अमर किरण मानता है जो हर्ष–शोक, सुख–दु.ख, जन्म–मरण और आधि–व्याधि से निरपेक्ष है–

"मैं चिर प्रकाश की अमर किरण!
मैं आदि–स्रोत हूँ जीवन का, मैं नहीं जानता जन्म–मरण!
मैं चिर प्रकाश की अमर किरण!"[2]

'चिन्तन' नाम कविता में कवि मानव से हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए कहता है कि मानव–समुदाय जिन सर्वोच्च अमर, नवीन आदर्शों के उच्च शिखरों पर चढने को तत्पर था, वहाँ वह आज तक नही पहुँच पाया है। इसके विपरीत वह युगों–युगों से मार्ग में हिम, वर्षा, झझा और आतप आदि से जूझता हुआ संघर्षों के मार्ग मे ही भटक कर रह गया है। कवि की चिन्ता देखिए–

"मैं सोचा करता हूँ निशि–दिन–
मानव–मन के सर्वोच्च अमर
आदर्शों के नव शिखरों पर
क्या पहुँच सकेगा पार्थिव नर?–
सह पग–पग पर निष्ठुर बन्धन
शत आधि–व्याधियाँ, दुःख मरण!"[3]

'वन्दना' शीर्षक कविता मे ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कवि सारे विश्व के कल्याण की कामना करता है। अन्धकार पर सत्य की पूर्ण विजय हो, मानव में जडता का क्षय होकर वह मृत्यु से निर्भय हो जाये–

"हमें आत्मबल दो, वसुधा पर–
जियें, मृत्यु से हो हम निर्भय,
सृष्टि–कमल से करें हृदय में
हम प्रकाश का, मधु का संचय,
आत्मामृत का पान करें हम
जड़ता के तम का हो क्षय, हे!
ज्योतिर्मय हे!"[4]

प्रेम केवल वही कर सकता है जो आग के पथ पर भी सुरीले गीत गाता चल सकें स्वर्णिल दीप–शिखा को देख कर पतंगा उसमें जलकर मर जाता है। इसी प्रकार सन्ध्या के समय बन्द होते हुए कमलों में बन्दी भ्रमर है। यदि वह चाहे तो मृदु–पंखुरी को डक लगाकर निकल भी सकता है किन्तु वह ऐसा नहीं करता, सांसारिक दृष्टि से तो इसे अविवेक कहा जा सकता है किन्तु अपने प्राणों का मोह छोड़कर प्रेमी का अपने प्रिय के लिए मिट जाना ही सच्चे प्रेम की रीति है। 'अमर टेक' शीर्षक कविता प्रेम के इसी उदात्त और

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'अनुभूति', पृष्ठ 257–258.
2 वही, 'मेरा अस्तित्व', पृष्ठ 252.
3 वही, 'चिन्तन', पृष्ठ 260
4 वही, 'वन्दना', पृष्ठ 271

उच्चतम स्वरूप का निदर्शन करती है–

"लख स्वर्णिल सुन्दर दीप–शिखा
वह बाल–पतिंगा उड़ आता,
सुन्दरता की उस वेदी पर
अन्धा हो जल कर मर जाता!
सन्ध्या के मुँदते कमलों में–
बन्दी हो जाता स्वयं भ्रमर,
हा, वह अबोध मृदु पँखुरी के
क्यों डंक लगा न निकल आता?
जग ने इसको अविवेक कहा
पर, रीत प्रीत की न्यारी है!
तज मोह प्राण का प्रिय के हित
प्रेमी ने मिटना कब छोड़ा!" [1]

'तरुण' का कवि हृदय श्रद्धा–भक्ति से ओतप्रोत भारतीय संस्कृति मे रगा हुआ आस्थामय है। वह ईश्वर को धन्यवाद करता हुआ करता है कि तुमने मेरी मिटटी–सी काया को अन्तर्ज्वाल मे तपा–तपा कर कचन कर दिया है। 'अनुग्रह' रचना इसी आस्था से पूर्ण है–

"अन्तर्ज्वाला में तपा–तपा
मुझको प्रति–पल, हे जीवन–धन,
मिट्टी की मेरी काया को
तुमने यों कर दी है कंचन–
यह प्यार तुम्हारा है कितना!" [2]

कवि मानव जीवन को सतत् संघर्ष–पूर्ण साधना मानता है। सघर्ष–पूर्ण इस कठोर साधना के लिए वह विषपायी नीलकण्ठ भगवान शकर को अपना आदर्श मानता है। ससार के सारे विषो का पान कर अमरत्व की साधना करने वाले भगवान शकर से अधिक महान आदर्श आदमी के लिए हो ही क्या सकता है? विष को अमृत में बदल डालने की यही साधना कवि का सन्देश है– समस्त मानव के लिए चेतना, शक्ति, उत्साह और प्रेरणा के रूप में कवि ने इन शब्दों में उतारा है–

"जब नाव जल में छोड़ दी,
तूफ़ान में ही मोड़ दी,
दे दी चुनौती सिन्धु को, फिर पार क्या! मँझधार क्या!
संसार का पी–पी गरल–
जब कर लिया मन को सरल,
भगवान् शंकर हो गये, फिर राख क्या! शृंगार क्या!" [3]

गरल का पान कर सरल मन होने की कल्पना ने ही तो शकर को नीलकण्ठ बनाया है। जीवन के गरल का पान

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'अमर टेक', पृष्ठ 265
2 वही, 'अनुग्रह', पृष्ठ 64
3 'प्रथम किरण' · 'सघर्ष पथ पर', पृष्ठ 55

कर भी मन की सरलता ही मानव का सर्वोच्च आदर्श हो सकता है। कवि की मनुष्य की जिजीविषा मे अत्यन्त आस्था है, उसके जीवट में अखण्ड विश्वास है। वास्तव मे कवि मनुष्य को ज्योति का पुंज मानता है, सृष्टि का शृगार मानता है। फिर इस ज्योति–पुंज के समक्ष, सृष्टि के शृंगार के सामने निराशाएँ और हताशाएँ तुच्छ है, निर्वीर्य है और निरीह है। मुक्त कण्ठ से मनुष्य की इसी शक्ति का गुणगान करता है–

"वज्र–से दृढ़ हाथ में ले डाँड तू अपने अचंचल,
तू प्रलय के सिन्धु की उद्दण्ड छाती चीरता चल;
फोड़ता मस्तक भयंकर आँधियों का वक्ष से निज–
नष्ट करता चल प्रकृति की शक्तियों का आसुरी बल।" [1]

कवि सृष्टि के सनातन सत्य को अंगीकार कर जीवन को निर्माण की साधना मानता है। आखिर सृष्टि में भी तो निरन्तर निर्माण की प्रक्रिया चलती रहती है। मरण बीज बन जाता है, नवीन जन्म का। मिट जाना ही तो भविष्य का जन्म बन जाता है। फिर निर्माण की प्रक्रिया मे मरण तो अनिवार्य सत्य है। उससे भय खाना कैसा? इसलिए निरन्तर आगे बढते रहना ही जवानी की एकमात्र सार्थकता है, मृत्यु और जीवन तो उसके यात्रा–पथ के अभिन्न साथी है, वे आयेगें और जायेगे और जीवन की धार को अनन्त काल तक अनवरत बनाए रखेगे–

"मिट जाना ही तो जीवन है,
मरण, सृष्टि का प्रथम चरण है,
अरे अमर, तू मर न सकेगा बीज रूप बन धरती में गल।" [2]

कभी–कभी 'तरुण' वैष्णव भक्त–कवियों के समान आत्मग्लानि से भर उठता है और भगवान से प्रार्थना करता है कि वह अपना वरद सत्य सिद्ध करते हुए सतप्त प्राणियो के क्लेश दूर करें। सूर और तुलसी के समान स्वय को पाप–ताप, मोह–माया की भॅवर तथा चचल मनोवृत्तियो के झंझावात मे घिरा असहाय प्राणी मान ईश्वर से सहायता की पुकार करता है–

"अंधकार! कुछ नहीं सूझता, लुप्त हुआ हा, कूल!
जलचर हिंस्र, विकम्पित तरणी, झंझा भी प्रतिकूल!
पहुँचाओ उज्ज्वल प्रकाश की–एक किरण, हे नाथ!
दौड़ो! दौड़ो!! पकड़ो मेरे कम्पित दुर्बल हाथ!" [3]

कवि ने 'बडी बहन प्यारी 'गुलाब' की स्मृति मे' शीर्षक रचना में किशोरावस्था में ही मृत्यु को प्राप्त अपनी बड़ी बहिन की स्मृति को भाव–प्रवणता के साथ–साथ किशोरावस्था की गतिविधियो का सहज चित्रण इस रचना में मिलता है। बहिन का हॅसता हुआ मुख, जल का मटका शीश पर रखे पनघट से आकर घर की देहरी पर खडी हो मॉ से घडा उतरवाना, भीगी हुई ओढनी का ऑचल निचोडकर सुसताते हुए, छोटे भाई को घुडकने के कारण अपनी मॉ से लडकर भाई को अत्यन्त छिपकर हॅस–हॅस मीठी बाते करना, भाई को गोद मे लेकर मुक्त पवन में टहलना, खाना खाते समय भाई को अपनी गोद मे बिठाकर अपने हाथों से खिलाना आदि चित्र एक अनूठे सौन्दर्य की अनुभूति कराते है–

"हँसता–सा मुख बहिन, तुम्हारा

---

1 'प्रथम किरण' साधना पथ पर', पृष्ठ 47
2 वही, 'तू अपने पथ पर बढता चल', पृष्ठ 61
3 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'पुकार', पृष्ठ 63

वह सुन्दर प्यारा–प्यारा
अहा, बहाता–सा आया–
मन के मरु पर रस की धारा!

x x x x

मैं भी क्रीड़ा छोड़, तुम्हारी
स्नेहमयी पा मंजुल गोद
व्यालू करता बैठ तुम्हारे
संग, बिना ही भूख, समोद!" [1]

कवि के चित्रण अत्यन्त सजीव, मार्मिक और स्पष्ट बिम्ब ग्रहण कराने में सफल है। अनेक कविताओ में यह तुलिका–कौशल बडा मनोहारी बन पड़ा हैं। इस दृष्टि से शिशु के चित्र अत्यन्त उत्कृष्ट रचना है। इस एक ही रचना में शिशु के शयन और जागरण का रसविभोर निरूपण कर वात्सल्य की सफल सृष्टि की है और वातावरण सर्वथा नाटकीय बन पडा है। कुन्द की खिलती चॉदनी रात की रजत रंगशाला पर प्रथम शिशु को पयपान कराती हुई रूपमयी कान्ता मॉ यवनिका उठने के साथ दिखलाई पड़ती है और देखिए अवाक् यह निस्पन्द चित्र–

"पड़ा स्तन शिथिलित मुख पर शान्त,
टिके हैं शशि पर शिशु के नेत्र,
देख चाँदी का चंदा गोल,
कुतुहुल से मुख हुआ अचेत!" [2]

निद्रागम के साथ मानो यवनिका गिरती है और पुन: जागरण के साथ उठती है–

"स्वस्थ हल्के मृदु निद्रा–तृप्त
द्रगों से सहज उड़ गये स्वप्न–
पुष्प को बिना हिलाए ज्योंकि
तितलियाँ उड़ जाती सुखमय।" [3]

सम्पूर्ण कविता युगल पात्र की एक भावनाटिका है और इतनी सरल कि आश्चर्य होता है ऐसा सम्पन्न और समृद्ध भाव इसमें समा गया।

'प्रथम किरण' का 'तरुण' सर्वाधिक प्रभावित है अंग्रेजी के रोमांटिक कवि वर्ड्सवर्थ और शैली तथा छायावादी कवियो पत और प्रसाद से। 'ऑसू' कविता पर प्रसाद के 'ऑसू' तथा पंत की 'उच्छवास की बालिका' कविताओं का प्रभाव है। रविन्द्रनाथ टैगोर ने ताजमहल को काल के कपोल पर ऑसू की एक बूंद कहा था, 'तरुण' की निम्न पंक्तियो में भी यही भाव है–

"करुणा की कोमल काया है!
ताजमहल इसकी छाया है!
युग–युग से बहता आया है!
इसकी नींव बना कर ही तो विधि का यह संसार बना है!" [4]

---

1 तरुण–काव्य ग्रन्थावली 'बडी बहिन प्यारी 'गुलाब' की स्मृति में', पृष्ठ 301–302
2 वही, 'शिशु के चित्र', पृष्ठ 313
3 वही, पृष्ठ 314
4 वही ऑसू, पृष्ठ 120

शिल्प की दृष्टि से 'तरुण' के काव्य का विशिष्ट गुण है, सहजता। उनके काव्य में कहीं भी आरोपित और सायास पांडित्य और अलंकरण नहीं मिलता। साधारण से साधारण दृश्यों और प्रसंगों को सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, सुकुमार कल्पना और भावना से वह इस प्रकार रंजित कर देते है कि पाठक को सहसा अग्रेजी के कवि वर्ड्सवर्थ की याद दिलाती है। छायावादी काव्य के उपकरणो से प्रभावित होते हुए भी उनका काव्य उनके दोषों से लांछित नहीं है। पंत जी ने भी उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा है– ***"कवि की भाषा में एक स्वच्छ संयम मिलता है, उनका प्रवाह निश्चय ही काव्यमय है, छन्दों में गति तथा जीवन है।"*** [12]

'प्रथम किरण' की रचनाओं का अनुशीलन करने पर उसमें अनेक स्थलों पर छायावादी काव्य मे प्रयुक्त शब्दावली, पद–योजना और वाक्य–विन्यास मिलता है–पुलकाकुल, करते खग गुंजन, करुणा कादम्बिनी, जीर्ण पत्र सब झडे, तममय रजनी तारों वाली, कलियॉ घूँघट खोल रही हैं, स्वर्ण पुरुष (सूर्य के लिए) अरुणोदय माया मे, मानव–आत्मा का शाश्वत धन, फूलों की मधु–भरी प्यालियॉ, बाल–विहग, स्वप्न–काया बन, स्वर्ग–विहान आदि ऐसे ही प्रयोग हैं।

उनकी कल्पना का सवसे बडा गुण है– बिम्ब–विधान एवं मूर्तिविधायिनी शक्ति। उसके द्वारा वह छोटी से छोटी वस्तु को भी मूर्त कर देते है। इस प्रकार कल्पना और अनुभूति का सामंजस्य उनके काव्य को प्रभु–विष्णु बनाने मे सर्वत्र सफल रहा है। 'एकान्त क्षणों में' शीर्षक गीत मे कल्पना के सहारे कवि रग, ध्वनि, छाया–प्रकाश के अनेक दृश्य प्रस्तुत करता है–

"देव–मंदिरों की दूरागत मंजुल घण्टा–ध्वनि टन–टन।
निखिल व्योम में तार–तार हो बिखर रही शिथिलित उन्मन।" [1]

'अमर टेक' मे जहॉ कवि की तुलना पुष्प, पर्वत एवं सरिता से की गई है, वहाँ कल्पना का वैभव तो सहज ही दीख पडता है, अनुभूति की तीव्रता भी पाठक को झकझोर देती है–

"सह घोर यन्त्रणाएँ उसका
हो गया कलेजा पत्थर, पर
उसने निज उर से निर्झर की
मधु धार बहाना कब छोड़ा।" [2]

सुष्ठु बिम्ब–योजना ने कवि के चित्रों को अत्यन्त सजीव, मार्मिक और स्पष्ट बना दिया है। इन चित्रों मे कवि का तुलिका–कौशल देखते ही बनता है। कोमल बिम्ब का उदाहरण दृष्टव्य है–

"कुन्द–गौर शशि गदगद होकर किलक रहा है, नभ में सुन्दर।" [3]

सागर का भयावह, विराट चित्र अकित करने के लिए भी जिस बिम्ब की योजना की गई है। वह अपनी विराटता के कारण सहज ही पाठक के सामने सागर की विशालता, गहराई और उसके उद्दाम, प्रचण्ड स्वरूप का चित्र प्रस्तुत कर देता है–

"उद्वेलित फेनोच्छ्वसित प्रबल चंचल हहराती शत सहस्त्र–
उत्ताल तरंगों की पृथु–पृथु इन जिह्वओं से निज अजस्र–" [4]

अलंकार–प्रयोग की दृष्टि से 'तरुण' की विशेषता यह है कि उन्होंने परम्परागत अलंकारो– यमक, श्लेष, उपमा आदि का प्रयोग तो किया है पर प्रथम तो शब्दालंकारों का प्रयोग एकाध स्थल पर ही हुआ है, दूसरे उनके उपमान सद्य और नये हैं। अपनी

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'एकान्त क्षणो में', पृष्ठ 148
2 वही, 'अमर टेक', पृष्ठ 264
3 वही, 'एकान्त क्षणो में', पृष्ठ 146
4 वही, 'शक्ति का सौन्दर्य–स्वप्न', पृष्ठ 203

षोडष कलाओं से गगन को दीप्तमान करता चन्द्रमा उसे प्रथमालिंगन में लज्जित नव–वधू के सदृश दिखता है। पाठक उसकी इस कल्पना और भाव–कोमलता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। इसी प्रकार सन्ध्याकालीन आकाश की धवलता की तुलना जब वह कच्चे श्री–फल से करता है तो उसकी सूक्ष्म दृष्टि एवं मौलिक कल्पना की प्रशंसा करनी पडती है–

"कच्चे श्री–फल के अन्तर–सा धवल हुआ सम्पूर्ण गगन
भाल चूमता डोल रहा है तरुओं का सुकुमार पवन।" [1]

कही–कहीं 'तरुण' ने मूर्त के लिए अमूर्त उपमानों का भी प्रयोग किया है। कार्तिक पूर्णिमा के उदय होते चन्द्रमा की तुलना हृदय में उठती इच्छा से की गई है–

"दूरस्थ क्षितिज तरुओं में से
इच्छा–सा उठ अतुलित मधुमय–
हो रहा कान्ति छिटकाता नव
कार्तिक पूनो का चन्द्रोदय।" [2]

मानवीकरण अलंकार के प्रयोग से मूर्त विधान और चित्रमयता मे अभिवृद्धि हुई है–

"रूपवती वसुधा सोई है ओढ़ चाँदनी कांतिमयी।" [3]

तरुण की भाषा मे प्रवाह और छन्दो में गति है। लाक्षणिक शब्दो के प्रयोग ने उनकी काव्य–भाषा को अधिक व्यजनापूर्ण बना दिया है–

"दूरी पर हैं श्वान भूंकते तम की काया कँप जाती।" [4]

भावो के अनुरूप शब्दो का प्रयोग उनकी रचना की सरसता को बढाने में विशेष रूप से सहायक हुआ है। 'साधना–पथ पर' कविता मे हृदय के उत्साह, दृढ सकल्प एव आपदाओं से टक्कर लेने की उमंग को अभिव्यक्त करने के लिए ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है–

"वज्र से दृढ़ हाथ में ले डाँड तू अपने अचंचल,
तू प्रलय के सिन्धु की उद्दण्ड छाती चीरता चल,
फोड़ता मस्तक भयंकर आँधियों का वक्ष से नित,
नष्ट करता चल प्रकृति की शक्तियों का तू आसूरी बल," [5]

तो कोमल अनुभूतियो के चित्राकन मे माधुर्य गुण सम्पन्न भाषा का प्रयोग मिलता है–

"उड़ गये भर निः शब्द उड़ान
स्वप्न–छाया बन में छविमान
तितलियों से स्वप्निल गतिवान्
खोजने स्वर्गिक स्वर्ण–विहान।" [6]

"उनके गीतों को पढ़कर वर्ड्सवर्थ की काव्य की परिभाषा (Spontaneous overflow of strong emotions) सहज ही याद आ जाती है। हृदयस्थ भाव किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'एकान्त क्षणो में', पृष्ठ 147
2 वही, 'गॉव की ओर', पृष्ठ 215
3 वही, 'एकान्त क्षणो में', पृष्ठ 148
4 वही, पृष्ठ 146
5 वही, 'साधना पथ पर', पृष्ठ 259
6 वही, 'शिशु के चित्र', पृष्ठ 313

गीत में फूट पड़े हैं। उनके गीतों का जन्म अन्तर्ज्वाला से हुआ है— चाहे वह अन्तर्ज्वाला बड़ी बहिन के असामयिक निधन से उत्पन्न हुई हो और चाहे संघर्ष–पथ पर बढ़ते हुए जीवन के कष्टों से उत्पन्न मानसिक बैचेनी से। अलंकृति या चिन्तन ने उनके गीतों को कहीं भी विकृत नहीं किया है, भावोच्छ्वास में कहीं व्याघात नहीं डाला है। वे शुद्ध लिरिक हैं— उनमें आवेग का तार कहीं नहीं टूटा है।" [13]

डॉ0 रामधारी सिह दिनकर के अनुसार – *'प्रथम किरण' को देखकर मुझे अपने आप पर ही आश्चर्य हुआ कि मैं आपको नहीं जानता था। सबसे पहली बात जो मैं इस पुस्तक के विषय में कहना चाहता हूँ, वह यह है कि भाषा इसकी स्वच्छ और बलवती हैं। आपकी भाव–भंगिमा भी अच्छी है। इस प्रकार का संग्रह कम प्रकाशित होता हैं।"* [14]

आ0 नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपने ग्रन्थ 'नया साहित्य' नये प्रश्न' में कहा है–*"श्री रामेश्वर लाल खण्डेलवाल की 'प्रथम किरण' उनकी रचनाओं का पहला संग्रह है। पुस्तक में उदीयमान कवि की भाषा सरल तथा उसके भाव मृदुल और रोचक है। कवि के चित्रणों में कल्पना का योग सुन्दर है और श्री सुमित्रानन्दन पंत की आरम्भिक रचनाओं का स्मरण कराता हैं।"* [15]

श्री सुमित्रानन्दन पन्त के अनुसार–*"प्रथम किरण' में यत्र–तत्र 'तरुण' जी की प्रतिभा का प्रकाश झलक उठता है। उसकी रचनाओं में विचार तथा आत्मा का मधुर सामंजस्य मन को आकर्षित करता है। प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में कवि का सौन्दर्य बोध विशेष रूप से निखर उठा है। वह प्रकृति के निकटतम सम्पर्क में आया है, इसमे सन्देह नहीं। उसके सूक्ष्म–निरीक्षण में कवि–हृदय का भावना–विलास धूप–छाँह की तरह घुल–मिल गया है। प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करने तथा नैसर्गिक वातावरण की अवधारणा करने में कवि को अत्यन्त सफलता मिली है। प्रकृति के मुख पर उसे अलौकिक तथा शाश्वत सौन्दर्य के भी दर्शन मिलते हैं। 'प्रथम किरण' में उस शाश्वत–चेतना का प्रकाश भी निहित हैं। कवि केवल सौन्दर्योपासक ही नहीं, साधक भी है। उसका एक अन्तर्मुखी व्यक्तित्व भी है, जिसकी छाप उसकी रचनाओं में स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं। अनेक कविताएँ अत्यन्त सुन्दर है।"* [16]

डॉ0 रामकुमार वर्मा के अनुसार–*"जीवन के जागरण की भाँति इस 'प्रथम किरण' में स्वस्थ जीवन की शक्तियाँ हैं। कल्पना का वैभव और अनुभूति की तीव्रता यत्र–तत्र निहित है। जीवन के विस्तृत क्षेत्र में कवि ने अपनी अन्तर्दृष्टि प्रसारित की है और नये–नये चित्रों में रंग भरा है। भावों की सूक्ष्म अभिव्यजंना की शैली में कवि का भाषा पर भी अधिकार है।"* [17]

'प्रथम किरण' काव्य–संग्रह मूलतः प्रकृति के प्रति कवि के आत्मीय रुख को उभारने वाला संग्रह है। प्रभात का चित्र हो अथवा गंगा–तट का स्वप्न, मरु का चन्द्रोदय हो अथवा पावस–श्री, ओस के कण हों अथवा चिडियों का कलरव, 'तरुण' का रचनाकार प्रकृति–श्री का अंकन करते हुए अघाया नहीं है। ग्राम्य जीवन का बडा वास्तविक, सजीव और कटु यथार्थ पूर्ण वर्णन किया है। कवि का जीवन–दर्शन और चिन्तन उसे सदैव अग्रसर रहने की प्रेरणा देता है। जीवन के सुन्दर–असुन्दर सभी रूपों का रम्य चित्रण किया है। इस सग्रह की कविताएँ भाव–गर्भित हृदय के उद्‌गारो के साथ 'तरुण' के पैने दृष्टिकोण को उजागर करती है। 'तरुण' वास्तव में तारुण्य के कवि है।

धूपदीप

डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' का दूसरा काव्य सग्रह 'धूपदीप' सन् 1951 मे प्रकाशित हुआ, जो पूर्णतः भक्तिपरक गीतों व पदो का सग्रह है। ये भक्तिपरक गीत व पद अनेक प्रभु–भक्त व प्रभु–प्रेमी–जन को सूर और तुलसी के पदों की भॉति ही भाव–विभोर कर देते हैं। कदाचित् इसी कारण इन पदो का 'प्रेमाजलि' के रूप मे 1986 मे पुनः प्रकाशन हुआ। प्राकृतिक परिवेश के प्रति निश्छल तथा सूक्ष्म निरीक्षण के कारण ही कवि का हृदय प्रभु की व्यापकता एव उसके विराट स्वरूप के प्रति पूर्ण समर्पण–भाव से उसकी महिमा व स्तुति की इस भक्ति रस–धारा का शीतल स्रोत बन गया है। ये भक्तिपरक गीत व पद जहॉ डॉ0 'तरुण' के काव्य को व्यापक फलक प्रदान करते हुए जान पड़ते हैं, वहॉ आधुनिक हिन्दी–कविता को उनकी यह देन भी महत्त्वपूर्ण है। कवि मन मन्दिर के वासी से गुहार करता है–

"आओ, मन–मन्दिर के वासी!
तुम बिन हे मेरे जीवन धन,
सूना है जीवन का उपवन!
डाल–पात सब सूख रहे हैं,
छाई चारों ओर उदासी!
आओ, मन–मन्दिर के वासी!" [1]

मन की दीनता–हीनता, लघुता, असहायता आदि को स्वीकारते हुए कवि 'मन–मन्दिर के वासी' और हरि चरणो की ओर उन्मुख होता है। वह भक्ति, प्रणति, पूजन, अर्चन आदि से ईश्वर की भक्ति करता है। वहॉ जीवात्मा और प्रियतम के चित्र भी मौजूद हैं। कवि अपने मानस में त्रिभंगी रूप की निरन्तर छटा चाहता है। कही–कही कविताऍं भक्तिकाल के पदों का आभास देती प्रतीत होती है। कहीं पश्चाताप का स्वर है तो कहीं उद्धार की भाव कामना है–

"क्या लाभ है गायक बनूँ, विद्वान, कवि, वक्ता बनूँ,
रोमांच से भर चार पल तेरा सुयश गाया न जो!
आकाश के तारें, समुद्रों के सभी मोती चुनूँ,
क्या लाभ है? तेरे चरण में दो सुमन लाया न जो!" [2]

प्रश्न उठ सकता है कि इन गीतों का आज के परिवेश में क्या मूल्य होगा? हमारे ख्याल से प्रेम–गीत जिस तरह हर युग में हमें भावों में डुबोते रहे है, उसी तरह ये भगवत् भक्ति के गीत भी इस नश्वर संसार की आपाधापी, घनघोर आपदाओ में, निराशा और अन्धकार के बीच हमें प्रकाश की किरणे देते रहेगें। जीवन की लालसा और शक्ति की याचना इन गीतो से ही पूरी होगी। इसलिए कवि की याचना है–

"नव भाव दे, नव छन्द दे,
नव कल्पना, निर्बन्ध दे!
उर–वल्लरी कर दे हरी, रस–निझरी, जीवन–भरी! वागीवरी!" [3]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'आओ, मन मन्दिर के वासी', पृष्ठ 224
2 वही, 'सुख–सम्पदा ले क्या करूँ', पृष्ठ 226
3 वही, 'वागीश्वरी', पृष्ठ 249

ईश–प्रेम और भक्ति भावना से आपूरित गीतों में कवि अपनी हीनता और दैन्य को प्रभु के प्रति निवेदित कर के स्वयं को उनके चरणों में समर्पित करता है। प्रभु के ध्यान से उसकी आत्मा में परमानन्द का उदय होता है और अमर ज्योति लहराने लगती है। कवि अपने मन को सन्देश देता है–

"पद–वन्दन कर रघुनन्दन के, छोड़ सकल छल–छंद अरे,
परमानन्द प्रकट हो जावे, ज्योति अमर लहरावे रे!
हरि चरणामृत पी ले, मनवा, भव–बंधन कट जावे रे!" [1]

भक्तिपरक गीतों में संरचना सरल है, लय लम्बी है और आत्म–निवेदन मर्म–स्पर्शी है जो सहसा भक्तिकालीन कवियो की भाव–विह्वलता की याद दिलाता है। कवि के भावुक हृदय का सत्व भावोष्मा से विगलित होकर गीतों की लडियों में अनूठे वेग के साथ वह निकला है। आधुनिक भौतिकतावादी युग मे डॉ0 'तरुण' के ये दीनतापूर्ण आत्म–निवेदन, गहन आस्तिकता और भावभरित, निश्छल समर्पण की भावना से आप्लावित भक्ति–गीत निश्चय ही एक आकस्मिक स्रोत माने जायेगें। कवि को विश्वास है कि प्रभु काली रात को दूर कर सवेरा लायेगे–

"विश्वास रखो, हे मूरख मन–
वे क्यों न सँभालेगें निज धन!
वे पहले काली रात बढ़ा, फिर बन अरुणोदय आएँगें!" [2]

यह बात सही है कि कोई भी कवि गंभीर दार्शनिक हुए बिना महान कवि नही बन सकता। 'तरुण' के सम्पूर्ण काव्य मे दार्शनिकता एव मनोवैज्ञानिकता का न्यूनाधिक स्वरूप विद्यमान है। जीवन की विशदता और विशिष्टता का सम्यक ज्ञान इन गुणों के अभाव मे सभव ही नही है। कवि की यह पहली विशेषता है कि उसने प्रकृति, संस्कृति–बोध, जीवन–चिन्ता, भक्ति–प्रणति, रहस्य, साधना एव अध्यात्म–विषयक विभिन्न कविताओं मे दार्शनिक एवं आध्यात्मिक अनुभूति को उजागर किया है। भारतीय मनीषा द्वारा वंद्य उस विराट् चेतना की महनीय छवि का चित्रांकन कवि ने विविध रूपों मे किया है। परमेश्वर का प्यार सृष्टि के कण–कण को परितृप्त करता दिखाई पडता है। 'बरस रहा है प्यार' मे कवि के हृदय के उद्गार देखिए–

"छलक रहे हैं रस के सागर!
भर ले कोई लाखों गागर!
कोई पहरेदार नहीं है, खुला पड़ा भण्डार!
तुम्हारा बरस रहा है प्यार!" [3]

जब उस विराट् रूप की दिव्य–दृष्टि किसी मनस्वी पर पडती है, तो उसके जीवन मे आनन्द की उर्मियो एवं ज्ञान का आलोक स्वतः प्रकट हो जाते हैं। यथा–

"नजर मुझ पर पड़ी तेरी, उजाला हो गया जग में!
अँधेरा मिट गया मन का, भरा आनन्द रग–रग में!
नजर मुझ पर पड़ी!" [4]

'नयन की जोत' मे आध्यात्मिक आभा के वरेण्य रूप की वन्दना करते हुए कवि ने हृदय के सम्पूर्ण समर्पण का

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'हरि चरणामृत पी ले, मनवा', पृष्ठ 229
2 वही, 'हरि आएँगे, हरि आएँगे', पृष्ठ 233
3 वही, 'बरस रहा है प्यार', पृष्ठ 235
4 वही, 'नजर मुझ पर पडी तेरी', पृष्ठ 238

महत्त्व उजागर किया है। वस्तुत भक्ति, पूज्य के प्रति अनन्त प्रेम का ही दूसरा नाम है। इसलिए कवि की आकाक्षा है कि–

"नयन की जोत बुझ जाए, चरण की चाल रुक जाए–
हृदय में किन्तु हे घनश्याम, तेरा प्यार लहराए!" [1]

'ऐसी पीर जगे' शीर्षक गीत में कवि उस विराट् ज्योति–स्वरूप की दिव्य दीप्ति में घुल–मिल जाना चाहता है। अब कवि को दिन–रैन कही भी चैन नही मिल रहा है–

"ऐसी पीर जगे इस मन में!
तेरे चरणों के चुम्बन को
पाने तेरे आलिंगन को
रात–दिवस पल–पल मैं तड़पूँ
जैसे बिजली काले घन में!
ऐसी पीर जगे इस मन में!" [2]

'धर्म की मंगल ज्योति जले' में कवि के अन्तर्मन का आलोक सर्वभूतहितरेता अथवा सर्वधर्मसमभाव के लोक हितैषी रूप में सन्निहित होना चाहता है। कवि के इन शब्दों में जीवन–पुष्प को प्रेम–पराग से आपूरित करने की महनीयता प्रतिपादित हुई है–

"युगों का सहकर भीषण घाम,
करे अब मानव कुछ विश्राम–
शान्ति के श्यामल यमुना–तीर, प्रेम के घने कदम्ब–तले!
धर्म की मंगल ज्योति जले!" [3]

इन भक्ति गीतो और पदों में एक सच्चे भक्त–हृदय की रागात्मकता तथा प्रकृत कवि के अन्तर्मन का परिष्कृत रूप देखने को मिलता है। 'तरुण' ने ईश्वर के प्रति अपने प्रेम, विश्वास दृढ आस्था तथा स्वस्थ आस्तिकता को अत्यन्त निश्छल तथा निर्विकार हृदय से पूर्ण समर्पण के साथ सरल भाषा में अभिव्यक्त किया है। भक्ति–गीत और पद मध्यकाल के भक्त कवियो की भक्ति रचनाओं की भॉति अनुभूति–प्रधान होने के कारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन गीतो में 'चलो मन! हरि चरणो की ओर', 'नौका डूबी जात हमारी', 'सुन लो मेरे प्राण पिया', 'हरि चरणामृत पी ले, मनवा', 'हरि आयेगे, हरि आयेगे', 'जन्म–जन्म में मुझको', आदि विशेष उल्लेखनीय है।

'धूपदीप' मे 'तरुण' की भक्तिपरक रचनाऍ है। ईश्वर के साथ अनुभूति के स्तर पर एकात्म स्थापित करके कवि समधिस्थ होकर किसी अदृश्य शक्ति के प्रति कवि का गहन आकर्षण तथा उसे देखने की ललक उसके काव्य को रहस्यात्मक भाव–भूमि प्रदान करती है। 'तरुण' के अनेक भक्ति–गीतो और पदो मे एक सच्चे ईश्वर–अनुरागी भक्त–हृदय की रागात्मकता तथा अन्तर्मन का उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है।

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'नयन की जोत', पृष्ठ 241
2 वही, 'ऐसी पीर जगे', पृष्ठ 242
3 वही, 'धर्म की मगल–ज्योति जले', पृष्ठ 246

हिमांचला

'हिमाचला' डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' की महत्त्वपूर्ण काव्य–कृति है। इसका प्रकाशन फरवरी 1952 में हुआ था। इसमे 'तरुण' के 74 गीत और कविताएँ हैं। 'तरुण' मूलत प्रेम सौन्दर्य और प्रकृति के कवि है, लेकिन कवि में प्रेम के राग के साथ ही क्रान्ति की आग भी पाई जाती है।

'हिमांचला' के सन्दर्भ में कवि तरुण की अपनी बात यह है– ***'हिमांचला' की रचना मेरे जीवन की बहुर्मुखी और धार्मिक अनुभूतियों का काल है, इसलिए इसमें मेरी प्रकाश–चेतना, आत्मोल्लास प्राणोष्मा, सौन्दर्य स्वप्न, पुलक–कम्प, रोमांच–स्तम्भ और अश्रु–उच्छवास आदि सभी का जीवन–सुलभ सतरंगी वैभव विद्यमान है।'*** [10]

वास्तव मे 'तरुण' एक ओर तो प्रेम एव सौन्दर्य की कोमल अनुभूतियो के कवि है तो दूसरी ओर विद्रोह, संघर्ष और आस्था की प्रखर संवेदनाओं के सर्जक। 'तरुण' के मानवतावाद के ये ही दो ध्रुवान्त हैं। हिन्दी आलोचना और कविता में 'तरुण' ने प्रेम, सौन्दर्य और संघर्ष को सहज रूप से सम्पूर्ण निष्ठा से रूपायित किया है। वे प्रेम और सौन्दर्य की कोमल और बारिक अनुभूतियों में तो प्रथम श्रेणी के समर्थ कवियों से भी कहीं–कहीं बहुत आगे हैं। उनके काव्य मे विचार की अपेक्षा भावना का प्राधान्य है– यही उनकी सीमा है। प्रकृति चित्रण की दृष्टि से वे हिन्दी के वर्ड्सवर्थ कहे जा सकते।

कवि रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' के पिता के पूर्वज अच्छे व्यापारी थे। बाद में चलकर भाग्य ने उनका साथ नहीं दिया और उन्हें कालान्तर मे दुर्दिनों का सामना करना पडा। बालक रामेश्वर जब पैदा हुआ तो घर की स्थिति बहुत अधिक गिर चुकी थी। इनकी माता ने विषम परिस्थितियों में इनका पालन–पोषण किया। अतः इन्हें निरन्तर संघर्ष की आग में तपना पडा। इस संघर्ष की प्रक्रिया में कवि आहत भी हुआ। कवि को स्वयं भी इसका अहसास है–

"मैं आया था जीवन–नभ में
रवि की पहली स्वर्ण किरण–सा
किन्तु तुरन्त ही उस पर निष्ठुर
काले घन घिर आए सहसा।" [1]

यहाँ 'तरुण' निष्ठुर काले घन के घिर आने की बात कहते हैं। ये निष्ठुर कालेपन दुख के ही काले बादल हैं, जो कि कवि के जीवन को उसके जन्म से ही ग्रस्त किए हुए थे। कवि के जीवन–वृत से भी यह प्रमाणित होता है। इस संघर्ष और दुख से गुजर कर कवि सच्चा सोना बन जाता है, रवि की स्वर्ण किरण–सा वह कवि के रूप में अपने प्रदेय के आलोक से हिन्दी कविता को भी आलोकित करता है, उसकी श्री–वृद्धि करता है और एक व्यक्ति के रूप में भी अपने चरण–चिह्न दूसरे के अनुवर्तन के लिए अंकित करता हैं। वास्तव मे महान व्यक्ति समय की रेत पर अपने पद–चिह्न छोडते ही हैं। असल बात यह है कि इस संघर्ष के बाद कवि की आस्था और श्री अधिक दृढ़ होती है, तभी तो वह इसी गीत में कहता है–

"मैं लौटूँगा जीवन नभ से
रवि की अन्तिम स्वर्ण किरण–सा
जो मिटने से पूर्व जगत का

---

1 'हिमाचला' उदय और अस्त, पृष्ठ 60

कण–कण कर देती कंचन–सा" [1]

'हिमांचला' की कविताओं में 'तरुण' विवेकानन्द टेगौर और निराला की ही भाँति मानव में आस्था और गौरव की भावना का संचार करते हैं, उसे उच्चतम और प्रगति की ओर अग्रसर करते हैं। 'तरुण' का मानवतावाद यहाँ व्यापक मानवीय सवेदनाओं वैज्ञानिकता और भौतिकता पर ही आधारित है। 'मानव बन, मानव बन' और 'नया जीवन नया समाज' नामक गीतों मे कवि मानव को सच्चा मानव बनने की प्रेरणा देता है। वह मानव को ही सर्वोच्च मानता है। कामधेनु और कल्पवृक्ष को वह मानव के लिए अग्राह्य मानता है। कवि के विचार स्पष्ट है–

"मत करो व्यर्थ गुणगान स्वर्ग के देवों का
उस कामधेनु का, कल्पवृक्ष के मेवों का
मत व्यर्थ विलासी देवों के गुण गा–गाकर
तुम मान घटाओ, मानव! मानव जीवन का।"

× × × × × ×

"धरती का सुन्दर जोड़ा – यह प्रिय नारी–नर–
कर देगा मानव–सृष्टि सफल, संयत, सुन्दर।" [2]

'सघर्ष कर आहें न भर' नामक 'हिमांचला' का गीत मानव को सघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। आहें भरकर बैठ जाना, निष्क्रिय हो जाना तो कवि की दृष्टि मे पुरुष के पौरुष का अपमान है। संघर्ष के भीषण क्षणों मे जिन्दा रहना है तो संघर्ष के लिए कमर कस कर सन्नद्ध हो जाओ। इस समय हाथ में गाण्डीव होना चाहिए, अर्जुन का गाण्डीव, जो विजय का नाद करता है, मृत्यु को भी चुनौती देता है–

"वंशी पटक, हे धनुर्धर!
जीवन भयंकर है समर।
गाण्डीव तू अपना उठा–
जीवित तुझे रहना अगर
संघर्ष कर, आहे न भर।" [3]

'तरुण' जग को आनन्द–धाम मानते है और इस विश्व को 'चिर मंगल उद्देश्यमयी रचना ललाम' मानते है। इसलिए वे मानव से निरन्तर निर्माण के पथ पर अग्रसर होने के लिए आग्रह करते है, उसे त्याग और बलिदान की ओर उन्मुख करते हैं। 'निर्माण' नामक कविता की पंक्तियाँ इसका प्रमाण है–

"निर्माण कर, निर्माण कर!
जीवन, घड़ी निर्माण की।
आदान और प्रदान की।
पावन मनोहर वेदिका,
यह त्याग की, बलिदान की।" [4]

'मुक्ति' नामक कविता मे कवि मन, वचन और कर्म के समन्वय को अनिवार्य मानता है। वह मानव के लिए करुणा

1 'हिमाचला' 'उदय और अस्त', पृष्ठ 60
2 वही, 'नया जीवन नया समाज', पृष्ठ 17–18
3 वही, सघर्ष कर, आहे न भर', पृष्ठ 15
4 वही, 'निर्माण', पृष्ठ 19.

और स्नेह को भी ग्राह्य मानता है। करुणा, स्नेह, त्याग तथा सेवा जैसे उच्चतम जीवनादर्श श्रेष्ठ मानव जीवन के लिए अनिवार्य है। कवि का दृढ विश्वास है कि इन जीवन–आदर्शों को अपने जीवन मे ग्रहण करने पर मनुष्य को इस पृथ्वी पर ही दुर्लभ मोक्ष की प्राप्ति होती है–

"करुणा, स्नेह, त्याग, सेवा की सहज निभाते रीत–
इसी व्योम के तले, प्रेममय गृह के बीच पुनीत–
मानव को इस वसुधा पर ही मिल जायेगी मुक्ति
खुले हृदय में, घर बैठे, मुक्ता पा जाती शुक्ति।" [1]

युग निर्माता साहित्यकार नई व्यवस्था, नए आदर्श और नये रास्ते का निर्माण करता है, वह नये समाज के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध होता है। वह क्रान्ति का योद्धा आग पर चलता है, ऑधियों से खेलता है। वह किसी भी प्रकार के बंधन–बाधा से डरता नहीं, रुकता नही। 'तरुण' यहॉ युवको में क्रान्ति की आग भरना चाहते है। 'जवानी आ गई है मेरी' नामक कविता का मूल कथ्य यही है। इस कविता की कुछ पंक्तियॉ दृष्टव्य है–

"धधकती आग का पथ है
भयंकर आँधियाँ–रथ हैं!
चरण में क्रान्तियाँ नाचें, बनी हैं साँस रणभेरी
जवानी आ गई मेरी।" [2]

'जाग, मेरे जीवन की आग' नामक कविता में कवि क्रान्ति को अपने नवयौवन का खेल मानता है, जिससे कि नूतन पल्लवों से डाल लाल हो जाए। यहॉ कवि सौद्देश्य क्रान्ति की बात करता है– मानव मन पर पडी जडता की सभी परतों को तोड़ देने और नये सर्जन के लिए वह क्रान्ति करना चाहता है। जवानी में कुछ कर गुजरने की चाह है इस कविता मे–

"क्रान्ति के सुन्दर खेल,
शीत, वर्षा, हिम,पाला झेल,
पर्व है नव यौवन का आज, खेल लू मैं भी अपनी फाग।
जाग मेरे जीवन की आग।" [3]

कवि दिव्य कल्पना को भी इसीलिए जगाना चाहता है, जिससे कि समुद्र की शक्ति और अगार–कुसुमो की आग से उसमे एक नये जीवन का उन्मेष हो। इसीलिए वह प्रेरणा को आमन्त्रित करता है–

"दिव्य वह रमणीय मेरी कल्पना जग जाय फिर से,
पूर्णिमा के सिन्धु–सा मन, शक्ति से लहराय फिर से।
और जीवन के विटप के ये कँटीले ठूँठ सूखे–
दहकते अंगार–कुसुमों से अहा, लद जायँ प्यारे।
मैं बहूँ स्वच्छन्द जैसे आंधियाँ भीषण प्रलय में।
प्रेरणे! आओ हृदय में!" [4]

कवि 'तरुण' के काव्य मे यौवन के इसी सम्यक रूप के दर्शन होते है। उसके समग्र काव्य में 'स्व' के साथ 'पर' की

1 'हिमाचला' 'मुक्ति', पृष्ठ 73
2 वही, 'जवानी आ गई मेरी', पृष्ठ 23
3 वही, 'जाग, मेरे जीवन की आग', पृष्ठ 36
4 वही, 'प्रेरणे, आओ हृदय में', पृष्ठ 37

भावनाओ का ससार बिखरा हुआ है। उनकी जवानी की कविताओं मे सघर्ष और क्रान्ति के बीज है, उत्थान और गति के चित्र है, समाज के साथ, उसके दुःख–दर्द के साथ जुडने की, उनमे उसके उत्कर्ष की बलवती कामना है। कवि ने अपनी कविताओ में जवानी को सुन्दर, सम्यक एवं आदर्श अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्राणो मे जितनी शक्ति संभव हो सकती है उतनी शक्ति उनकी इन कविताओ में समाहित है। 'तरुण' ने जीवन की वास्तविक अनुभूतियों के सहारे जवानी की उमंगों की वास्तविकता की शक्ति को शब्दों में उतारा है। जवानी की ऐसी एक जीवटभरी उमग देखिए–

"उमंगें ले हृदय में सौ–
चली लहरें किनारे को,
मिटी चट्टान से टकरा–
न था कुछ भी सहारे को।
कहाँ वै–डौल चट्टानें! कहाँ सुकुमार पानी है।
जवानी है, जवानी है!" [1]

'लौह पुरुष, तु रोता क्यों है?' नामक गीत में कवि निराश मानव के हृदय में, मानव को लौह पुरुष कहने का तात्पर्य ही उसमें शक्ति जगाना है तथा अनन्त जीवनी शक्ति भरना है, उसे नई प्रेरणा देना है। मानवीय गौरव के प्रति कवि उसे सचेत करता है–

"मुक्त पड़े पथ सारे तेरे,
धरती, सिन्धु, सितारे तेरे!
धरती फाड़, समुद्रों को मथ, दास किसी का होता क्यों है।
लौह पुरुष! तू रोता क्यों है!" [2]

आदमी के चरण जीवन पथ पर जब रुकने–थकने लगते हैं,उसकी सॉसे बोझ से भारी होने लगती हैं तब किसी ऐसे सवाद की आवश्यकता होती है जो लडखडाए पैरो मे शक्ति भर दे, उखडती हुई सॉसों को स्थिरता प्रदान कर सके। कवि 'तरुण' का कवि ऐसी अवस्थाओ के लिए ही तो प्रेरणा और शक्ति का सदेश लेकर सामने आ खडा होता है–

"कंटीले पथ पर बढ़ता जा, पाँव सब छिल ही जायँ भले!
बटोही ठण्डी साँस न ले!
झेलते आँधी वर्षा घाम–
निरन्तर बढ़ता तेरा काम!
मिले या मिले नहीं विश्राम पेड़ की शीतल छांह तले!" [3]

कवि मनुष्य को खरा कंचन बनाने का विश्वासी है। वह नही चाहता कि जीवन यात्रा का पंछी मनुष्य केवल आदमी रहकर ही मरखप जाय, वह तो उसे कचन की दमक दिखाकर मानवता का केन्द्र बिन्दु बनाने का स्वप्न देखता है–

"आग में जल प्यारे, कुछ और
राख मत बन, कंचन की ठौर
परीक्षा तब होगी पूरी, खरा कंचन होकर निकले।" [4]

---

1 हिमाचला' जवानी है, जवानी है', पृष्ठ 35
2 वही, 'लौह पुरुष , तू रोता क्यो है', पृष्ठ 28
3 वही, 'बटोही ठण्डी सॉस न ले', पृष्ठ 12
4 वही, पृष्ठ 12

कवि उस मल्लाह का स्वागत करता है जो अनन्त सिन्धु के किसी छोर को पाने के लिए उत्ताल तरंगों से लडकर घनघोर अंधेरे में मौत से टकराने का साहस करता है। इस यात्रा मे जो साहस के साथ अपनी नाव खेता रहता है, वह मंजिल को पहुँचता है, सफलता उसके चरण चूमती है–

सागर में जितना चढ़ता जल–
नाविक में बढ़ता उतना बल!
कायरता है– इन लहरों से आगे बढ़कर होड़ न लेना!
माँझी साहस छोड़ न देना।"[1]

'पछी, पिजरे के तोड द्वार' कविता में कवि ने ससार और समाज के बंधनो को तोडकर स्वाधीनता का यशोगान किया है जिसमे वदी जीवन के प्रति विद्रोह देखते ही वनता है। कवि स्वर्ण–सदन में बंदी होकर दूध–भात का भोजन करने का पक्षधर नही है बल्कि वह पिजरे को तार–तार कर देना चाहता है ताकि अरुणाचल मे मुक्त उडान भरी जा सके–

"तू मुक्त अभी हो सकता है,
अरुणोदय में खो सकता है,
झटका देकर के तोड़ उसे, पिंजरे को कर यदि तार–तार!"
पंछी! पिंजरे के तोड़ द्वार!"[2]

फूलो का रस पॉव मे लिपटाकर बैठ जाना तो जीवन की हार है। जीवन तो भीषण और निरन्तर रण है और रण मे विजय पाना सरल काम नही होता। इस रण मे विजय पाने के लिए आग चाहिए, आग। ऐसी आग जो मार्ग की चट्टानों को पिघलाकर मोम वना सके, पथ के सारे कॉटों को उखाडकर दूर फेक सके। निरन्तर कठोर परिश्रम इसका एकमात्र पाथेय है, एकमात्र साथी है–

"बाधक चट्टानें चूर न की,
पथ की झाड़ी भी दूर न की,
ये अंग चुभाती रहें सदा, वे बाधक हों दिन–रात हमें।
यों काम नहीं चलता जग में।"[3]

'तरुण' की आत्मस्वातन्त्र्य की भावना व्यजित करने वाली एक अन्य कविता 'गीत भरा हो मेरा जीवन' भी विशेष उल्लेखनीय है–

"मेरा जीवन हो वह निर्झर–
फोड़ चला हो जो गिरि–अन्तर,
उजले नील गगन के नीचे
बहता जो स्वच्छन्द निरन्तर,
तोड़ चला जो क्रत्रिम बन्धन
गीत–भरा हो मेरा जीवन।"[4]

प्रेम की दिव्य–सृष्टि भावुक हृदयो में पवित्र रस की सृष्टि करती रही है। और फिर जिसके मन पर मधु–गीतों ने एकाकी अधिकार कर लिया हो, जिसके हृदय के शतदल मे मधु की अपरिमित बाढ आ गई हो, ऐसा भावुक कवि प्रेम के मधुर लोक में ही

---

1 'हिमाचला' 'माँझी, साहस छोड न देना', पृष्ठ 13
2 वही, 'पछी पिजरे के तोड द्वार', पृष्ठ 27
3 वही, 'यो काम नहीं चलता जग में', पृष्ठ 29.
4 वही, 'गीत भरा हो मेरा जीवन', पृष्ठ 34

विचरण करता रहता है–

"मेरे मन पर मधु गीतों का
एकाकी अधिकार हो गया,
इतना मधु आया फूलों में–
फूलों को ही भार हो गया।" [1]

'हृदय समर्पण' कविता मे कवि का विश्वास है कि जो अपने व्यक्तित्व का विसर्जन कर निःशेष होने की क्षमता रखता है, अपने फुकारते अहं को विगलित कर रसमय हो सकता है, वही इस आत्मव्यापार के पथ पर अग्रसर हो सकता है, और एक बार जब वह इस पथ की पीडा को स्वीकार कर लेता है तो सारी सृष्टि उसके लिए मनोहर गान बन जाती है, पेड़–पौधों का कुसुम शृंगार बन जाती है–

"है कठिन, निस्पृह हृदय से प्रेम पथ पर आत्मविनिमय
है कठिन, अस्तित्व खो निज, अन्य में व्यक्तित्व में लय,
प्राण का निश्छल समर्पण तो तुरत ही सृष्टि भर में–
फैल जाता सूक्ष्म मन की भावना साकार बन कर।
x x x x x x x
व्यक्त होता दो हृदय का यह समर्पण उन क्षणों में
सृष्टि भर के पेड़–पौधों का कुसुम शृंगार बनकर।" [2]

प्रेम के सुरम्य स्वप्न पर कोटि–कोटि रत्नों की राशि, स्वर्ग के अनन्त वैभव एवं सौ–सौ प्रभातों का जागरण न्यौछावर है। जीवन के सारे सुखो, सम्पदाओ और स्वर्ग के अनन्त वैभव को एक क्षण में त्याग देने की शक्ति प्रेम प्रदान करता है। कवि माँगता है तो केवल प्रेम, और उसके लिए सभी कुछ त्याग देने की कामना–

"है न कामना – मिले अपार सम्पदा,
एक चाहिए हृदय – पराग से लदा,
सौ प्रभात दो न कोटि–कोटि रत्न दो,
स्वर्ग दो न, प्रेम का सुरम्य स्वप्न दो।" [3]

'प्राण, तुम मेरे हृदय मे' शीर्षक कविता मे कभी तो कवि की प्रेयसी उसके हृदय में स्निग्ध सम चाँदनी के बीच मुग्ध मजुल रागिनी–सी गूँजती है, तो कभी सुरभित–पवन युक्त नव वसन्ती यामिनी की भाँति उसके हृदय पर छा जाती है। कभी धवल हिमगिरि के चरण मे मजु कल–कल नाद करती मदाकिनी–सी उसके हृदय मे बहती है, तो कभी प्राण की सम्पूर्ण आभा लेकर मेघ–माला के हृदय को चीरती हुई सौदामिनी–सी कौंधती है–

"प्राण की सम्पूर्ण आभा से प्रकाशित हो समुज्ज्वल
मेघ–माला के हृदय को चीरती सौदामिनी–सी–
कौंधती हो तुम हृदय में!
प्राण, तुम मेरे हृदय में!" [4]

---

1 'हिमाचला' 'मधु भार', पृष्ठ 10
2 वही, 'हृदय–समर्पण', पृष्ठ 48
3 वही, 'चाह', पृष्ठ 39
4 वही, 'प्राण , तुम मेरे हृदय में', पृष्ठ 41

'मुखछवि' नामक कविता में कवि ने नायिका के सौन्दर्य का एक चित्रकार की भॉति, अंकन किया है। कवि ने अपनी प्रिया के मदभरे, उजले, रतनारे, मीन से चचल, सीप से चौड़े अनियारे, कजरारे नयनो मे लहराता प्रेम और यौवन का रस तथा कमल–पंखुडी जैसे कोमल विशाल पलकों पर बरौनियों के बालो की चमक के अत्यन्त मादक और मोहक चित्र बनाए हैं–

"तुम्हारे मुखड़े में क्या हैं?
मदभरे, उजले, रतनारे,
मीन–से–चंचल, कजरारे,
सीप से चौड़े, अनियारे,
नयन में रस लहराता है
तुम्हारे मुखड़े में क्या है?" [1]

प्रेम के लिए 'तरुण' बलिदान को अनिवार्य मानते हैं प्रेम केवल वही कर सकता है जो आग के पथ पर सुरीले गीत गाता चल सके। जो अपने शरीर को ही अपने पथ की खेह बनाने की सामर्थ्य रखता हो, जो शूल को फूल और ज्वाल को जयमाल, अश्रु को मोती, रुदन को संगीत कहता हुआ डूबकर भी यह कह सके कि वह पार हो गया, मरण जिसे त्यौहार तथा धूप जिसे चंदन मालूम हो– ऐसा व्यक्ति ही प्यार की मंजिल पर सफल हो सकता है। कवि की यह मान्यता 'प्रेम' शीर्षक कविता मे स्पष्ट होती है–

"वह करेगा प्रीत, केवल वह करेगा प्रीत,
आग के पथ पर सुरीले गा सके जो गीत!
देह को अपनी, बना ले पंथ की जो खेह,
जीत में है हार जिसको, हार में ही जीत!" [2]

यहॉ कवि अनेक गीतों में प्रेमिका की स्मृति से आहत है, अपने अतीत को याद करता है, कभी उसी कारण से उसे भूल जाना चाहता है, कभी उस अतीत को लौटाना चाहता है। वह अतीत के जीवन की तस्वीर को कल्पना के द्वारा दोबारा जीवित करना चाहता है, उसमें वेदना ने एक गहरी कसक उत्पन्न कर दी है। सच्चाई तो यह है कि अतीत व्यतीत हो चुका होता है, और समय गुजर गया होता है, वह वापिस भी नहीं लौटता। 'तरुण' के गीतों पर भी यह बात चरितार्थ होती है। इस सग्रह के अन्तिम गीतों 'कितनी मधुर वह रात थी', 'वे सुन्दर से दिन बीत गये', 'वह कथा सुन क्या करोगे', 'बीती बाते मत याद दिला', 'मोती का–सा मन टूट गया', 'इस पीडा का उपचार न कर', तथा 'प्रिय की सुधि', 'स्मृति', 'मधुभार', 'रंगिणी' आदि कवि के अतीत जीवन की यथार्थ अनुभूतियों के ही प्रतिफलन हैं। वासना की ऊष्मा कल्पना की सूक्ष्म रेखाओ में यहॉ घुलकर गीतो का रूप धारण कर लेती है। प्रेमाकुल कवि गीतों में अपनी वेदना को घोलकर मधुर रूप में प्रस्तुत करता है, लेकिन इस मधुरता के पीछे गहरा अवसाद भी कवि के अवचेतन में ही है।

'वे सुन्दर से दिन बीत गये' शीर्षक विरह–गीत मे कवि की विरह–पीडा बड़ी तीव्रता के साथ व्यंजित हुई है। उसके अनुराग से पूरित हृदय का सूर्य तो मानो अस्त हो गया है। अब तो केवल स्मृतियॉ शेष हैं। जो मादक और मधुर स्वर–लहरी उसके कानो मे कभी गूॅजती थी, अब तो उसी स्मृतियॉ हृदय को चीर रही हैं। अब तो उसका ससार ही बदल गया है। उसके प्रेम का उपवन उजड चुका है जहॉ नगी डाले, तप्त पवन और विकराल बगुलो मे सूखे पत्ते ही उडते देखे जा सकते है–

"देखो रे अब उजड़ा उपवन,
नंगी डालें, यह तप्त पवन!

1 'हिमाचला' मुख–छवि', पृष्ठ 45
2 वही 'प्रेम' पृष्ठ 39

विकराल बगुलों में कैसे जाते सब सूखे पात बहे!
वे सुन्दर से दिन बीत गये!" [1]

'बीती बातें मत याद दिला' का कवि अपने सुनहले अतीत को याद करके व्यथित है। वे चॉदी की राते जिनमें कलियो से अलियों के प्रणयपूर्ण मधुर और मादक वार्तालाप होते थे अब नही लौटेगे-- यह सोचकर कवि का मन जो सयोगावस्था के कोमल शिरीष के कुसुमों--सा था-- आज पाषाण--शिला हो गया है। जलधारा मे बहते हुए दो तिनकों की भॉति दो प्राणों का सयोग जो कभी हुआ था, अब छूट गया है। अब वह प्रेम की बजती हुई वीणा मौन एवं मूक हो चुकी हैं, व्यर्थ ही टूटे तार मिलाने से अब कोई लाभ नहीं –

"वह एक वसन्ती रजनी का
सपना था, जो अब टूट गया!
जलधारा में दो तिनकों का
संयोग हुआ था, छूट गया!
वह बजती वीणा, मौन हुई
निस्सार न टूटे तार मिला!
बीती बातें मत याद दिला!" [2]

प्रेम मे विरह की स्थिति भी आती है और विरह पीडा को जन्म देती है। इस पीडा की एक स्थिति यह भी आती है, जब कवि पीडा का अभ्यस्त हो जाता है, वह उसका उपचार भी नही चाहता। फिर पीडा कवि के जीवन का संगीत बन जाती है। पीडा में कवि के प्रेम का प्रसार हो जाता है, वह कण--कण से ही प्यार करने लगता है--

"कण--कण से मेरी प्रीत हुई,
पीड़ा, जीवन संगीत हुई,
कड़वी प्याली पी लेने दे-- सादर, अपने सिर आँखों धर
इस पीड़ा का उपचार न कर!" [3]

'तरुण' अपने प्रिय को न पा सकने की कसक और टीस को बडे मार्मिक शब्दो मे अभिव्यक्त करता है। हृदय से हृदय का मिलन जीवन को नन्दनवन बना देता है। हृदयों के मिलन की इस बेला में कॉटे मृदुल कुसुम हो जाते है और पथ की धूल कुकुम, दृगो का नीर मोती हो जाता है तो पसीना शीतल चन्दन--

"काँटे हो जाते मृदुल कुसुम
पथ--धूल मुझे होती कुकुम,
मोती होता दृग--नीर, पसीना शीतल चन्दन हो जाता!" [4]

इन प्रणय--गीतों में मादकता है, एन्द्रियता है, फिर भी कवि कहीं असंयत नहीं हुआ है, उसमे हल्की भावना कहीं नहीं आ पायी है। प्रेम की इस पूजा में वासना, कामना, तृष्णा नही है, यदि कुछ है तो पवित्र भावना और उससे निःसृत पवित्र समर्पण।

प्रकृति को कवि ने बडी तन्मयता के साथ निहारा है, और उसके प्रभाव एवं स्वरूप को बडी सरलता के साथ

---

1 'तरुण--काव्य ग्रन्थावली' 'वे सुन्दर से दिन बीत गये', पृष्ठ 137
2 वही, 'बीती बाते मत याद दिलाओ', पृष्ठ 297.
3 वही, 'इस पीडा का उपचार न कर', पृष्ठ 136
4 वही, 'तुम मेरे साथी होते तो', पृष्ठ 283

अभिव्यक्त किया है। प्रकृति के साथ तन्मयता और तल्लीनता की प्रवृति कवि के पास इतनी अधिक है, कि वह अनायास ही प्रकृति के सुकुमार कवि पंत की सहज स्मृति दिला देती है। 'हिमांचला' में प्रकृति का चित्रण और भी अधिक स्वाभाविक हो उठा है। प्रकृति के विराट मातृत्व की कल्पना करने वाला यह रूपक हमारे कथन को स्पष्ट करने में समर्थ है–

"उधर अस्त हो गया दिवाकर
इधर, प्रकट हो रहा चन्द्रमा
ज्यों जग–शिशु को पिला एक स्तन
खोल रही दूसरा, प्रकृति–माँ!" [1]

सूर्य और चन्द्र के दो स्तनों से संसार का पोषण करने वाली प्रकृति मे मातृत्व की कल्पना कवि 'तरुण' की मार्मिक अभिव्यक्ति तो है ही, जनसामान्य की सुन्दर अभिव्यक्ति भी है। इन पंक्तियों में केवल शब्दों का चमत्कार अभिव्यक्ति का कौशल मात्र ही नहीं है, उसमें कवि की रसमयी दृष्टि है, उसका जीवन–दर्शन है। प्रकृति के ऐसे मंगलमय स्वरूप की कल्पना कवि की अनुभूति की उदारता की घोषणा है। उसमे केवल भावमयता ही नहीं है, ससार के पोषण की मंगलकामना भी निहित है। प्रकृति को सम्पूर्ण ससार की मॉ के रूप में देखने की यह दृष्टि कवि के प्रकृति के प्रति विशिष्ट प्रेम के कारण ही बन पायी है। निःसन्देह प्रकृति जग का पोषण एक मॉ की भॉति ही तो कर रही है। इसी प्रकार का एक उदात्त और विराट बिम्ब इसी कविता मे आगे मिलता है–

"धवल चाँदनी का कोमलतम–
अपना आँचल डाल रुपहला–
सुला रही चिर पीड़ित जग को,
स्नेहमयी रजनी – हिमाँचला।" [2]

दुखित–पीडित जग के लिए रजनी शान्ति प्रदान करने वाली है। रात्रि मॉ के रूप मे आकर सारे ही कष्ट पीड़ा को भूलाकर माता के ऑचल के समान अपना आवरण फैलाकर मॉ की गोद की भॉति अपनी नीरवता से मनुष्य को सुलाकर कुछ देर के लिए उसे चिन्ता–मुक्त करके सान्त्वना प्रदान करती है। निशा आगमन के साथ निशा अवसान का भी अत्यन्त स्वाभावित चित्रण है–

"लो, निशा अब जा रही है!
प्रथम मधु–निशि में लजाती,
चन्द्र–मुख पट में छिपाती–
लाजवन्ती कुलवधू–सी नव उषा मुसका रही है!
लो, निशा अब जा रही है!" [3]

प्रकृति को देखने की यह मौलिक एवं नवीन दृष्टि कवि के हृदय में उसके प्रति अपार श्रद्धा और प्रेम को ही रेखाकित करती है। वस्तुत प्रकृति जीवन का आधार ही है। इसके बिना धरती पर जीवन की कल्पना तक नही की जा सकती। 'प्रकृतिः जीवन का आधार' शीर्षक कविता मे इस तथ्य का मनोहारी चित्रण स्पष्ट है। सावन की बौछारो, कोकिला की तानो, झरनो के कल गानो, हरी घाटियों मे मुसकाती हुई उषा, विहगो के गुजार इत्यादि से रहित पृथ्वी मानो मरघट ही होती। रंग–बिरंगें फूल, हरियाली से लदे चमकती सरिताओ के कूल, चॉद–सितारो से जगमगाते नीले मुक्त विस्तृत आकाश एवं मधुर पवन के बिना धरती घोर मरुस्थल ही होती

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'हिमाचला पृष्ठ 169
2 वही, पृष्ठ 169
3 वही, 'लो,निशा अब जा रही है', पृष्ठ 210

और इस स्थिति मे यहाँ जीवन का संचार पूर्णतया असम्भव ही था। इस प्रकार जीवन के लिए प्रकृति की उपादेयता से कवि भली–भाँति परिचित है, जो उसके हृदय को प्रकृति–प्रेम से प्लावित करता रहता है–

"यदि धरती पर रंग–बिरंगे ये मुसकाते फूल न होते,
हरियाली से लदे चमकती सरिताओं के कूल न होते!
चाँद–सितारों वाला नीला युक्त महा आकाश न होता,
मधुर पवन के मन्द झँकोरे सुखदायी, अनुकूल न होते–
तो हम मृग–से भोले मानव, ले अपने व्याकुल मन रीते–
घोर मरुस्थल से इस जग में एक घड़ी भी कैसे जीते!" [1]

'गेंदा के फूल' में कवि ने बाल–मनोविज्ञान का अच्छा चित्रण किया है। चन्दनिया धूप में खिलते हुए हल्दिया, पीले, सिन्दूरी, जाफरानी और वासन्ती रंगों में रस–भरे गेंदे कवि को कभी रसीली राल टपकाते, सलोने, सरल शिशुओं–से, तो कभी कौतुकी बालकों के समान तथा कभी सिर–चढे हुए लाडले बच्चों से गर्वीले लगते हैं–

उन स्वस्थ गुदगुदे, इतराते
शिशुओं से ये खिल रहे फूल–
खिलखिला रहे हो आंगन में,
जो खींच–खींच माँ का दुकूल!" [2]

नीरव एव निर्जन गंगा के तट पर दूर–दूर तक ढेरों पीली सरसों फूल गई है, जो पवन के झकोरो से झूम–झूम कर क्लिक उठती है– कवि के हृदय को हर्ष और उल्लास से भर देती है। अरहर के पौधो से पवन का झौंका आकर मानों उस फूली सरसों को रोमाचित कर जाता है, जैसे परम विनोदी पति के द्वारा अपनी लाजवन्ती कामिनी को हल्की–सी चिमटी भर लेने पर वह रोमाच से भर उठती है–

"अरहर के पौदो से उठ कर,
आया पवन – झकोरा, सत्वर,
सरसों की हरियाली सारी,
सहसा यों कर उठती मृदु स्वर–
परम विनोदी पति के द्वारा–
चिमटी भर लेने पर हल्की,
सलज कामिनी जैसे, कोमल–
कर उठती धीमी–सी सी–सी!" [3]

'तरुण' लोक–जीवन, ग्रामों और किसानो से बडी गहराई से जुड़े है। उनके काव्य में ग्रामीण जीवन का चित्रण इतना सजीव है और सरल, सहज प्रवाहमयी भाषा मे हुआ है कि मन उससे बंध जाता है। इन्होंने ग्रामांचलो की भोली–भाली, यौवन से पूर्ण गोरियो का जीवन्त चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। ग्रामीण पृष्ठभूमि, उनकी वेशभूषा और दिनचर्या के साथ ग्रामवधुओ का सौन्दर्य और क्रिया–व्यापारों का चित्र 'ग्राम–वधू' शीर्षक कविता में भी उतारा गया है–

---

1 तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रकृति जीवन का आधार', पृष्ठ 117
2 वही 'गेदा के फूल', पृष्ठ 176
3 वही 'सरसो फूली' पृष्ठ 178

"चढ़ा ओढ़नी, जल में उतरी अब घुटनों तक,
रखा घड़ा पानी पर दो पल, जल हिलराया छल्छल्–छल्छल्,
भर कर घड़ा उठाया भारी,
झूम उठी यौवन में सारी,
काया गदरारी गदरारी
काढ़ तनिक–सा घूँघट
सिर पर रख घट
पगडंडी पकड़ी निज सँकरी,
जाती झटपट, लहराती लट, फहराती पट।
मादक गति से और पवन से–
पड़ते हैं साड़ी में सलवट।" [1]

अभावग्रस्त एकाकी घर मे ज्वर से पीडित बच्चे को लेकर बेचारी ग्राम–विरहिणी दीपक को तुलसी के नीचे रख, पलको को मीच और हाथ जोडकर बार–वार झुक, ऑचल फैला–फैलाकर कुलदेवी की क्षेम मनाती है। पति के परदेस चले जाने पर ग्राम–विरहिणी के एकाकी परिवेश का हृदय–स्पर्शी चित्र कवि की, 'ग्राम–विरहिणी दीप जलाती' शीर्षक कविता मे खीचा गया है, जो बरबस मन को मोह लेता है–

"दीपक रख तुलसी के नीचे,
हाथ जोड़ पलकों को मींचे,
वार–बार झुक, आँचल फैला, कुलदेवी की क्षेम मनाती।
ग्राम–विरहिणी दीप जलाती।" [2]

'कौन?' शीर्षक कविता में कवि ने उस अदृश्य शक्ति के प्रति विशेष आकर्षित होता है, जो कि इस अनन्त नीले आकाश, चमकती धूप, मखमली हरियाली, मधुर शीतल जल से पूर्ण सरिताओं, विस्तृत मैदानों के सम्मुख लेटी हुई–सी नीली गिरिमालाओं तथा मौन भाव से खडे तरुवरों की शोभा–सुषमा का आदि स्रोत है। कवि उस अदृश्य सत्ता को देखने के लिए रोमांचित हो उठता है–

"गहरा नीला आकाश! चमकती धूप! मखमली हरियाली!
है पवन झकोरे मधुर–मधुर, सरिता–लहराते जल वाली!
विस्तृत मैदानों के आगे लेटी नीली गिरिमालाएँ!
हैं मौन खड़े भावुक तरुवर, स्नेहाकुल फैला शाखाएँ।
मैं देख रहा इस शोभा को, विस्मय विमुग्ध सा, हुआ मौन।
रोमांच हो रहा रे मुझको– इस सुन्दरता का स्रोत कौन!" [3]

इसी प्रकार 'जिज्ञासा' शीर्षक कविता भी कवि का किसी अदृश्य शक्ति के प्रति प्रेम परिलक्षित होता है। कवि उस ज्योति–सिन्धु की विचित्र झलक देखने के लिए विशेष उत्सुक है, जिसकी लहरे छलक–छलक कर यहाँ ऊषा की लाली के रूप मे आती हैं, जिसकी हिल्लोलों का बल मनुष्य के मुक्त हृदय में विश्व–प्रेम की प्रबल भावना बनकर अक्षय–मधु को उमडाता है। रवि, शशि और तारे आदि जिसकी लहरों के उछले हुए जल–कण मात्र हैं– वह सुषमा और शक्ति का सिन्धु जिस भी दिशा मे लहरा–गहरा रहा है, कवि

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'ग्राम–वधू', पृष्ठ 219.
2 वही, 'ग्राम–विरहिणी दीप जलाती', पृष्ठ 220
3 वही, 'कौन', पृष्ठ 266

उसको देखने के लिए अधीर हो उठा है–

"मौन–मुग्ध सा कितने अरुणोदय मैं देख देख कर हारा–
पर, उस चेतन–सागर का रे, मिल पाया मुझको न किनारा!
मैं चिर सुख से व्याकुल होकर, गीत मधुर गा उठता शत शत–
प्रथम किरण के स्वर्ण–बाण से जैसे बाल–विहग मर्माहत!" [1]

'उपचार' शीर्षक कविता मे कवि कहता है कि सिर्फ रोने से दूख दूर नहीं होगा और न ही पत्थर को ऑसू से चूर किया जा सकता है, अगर काले काजल की जिन्दगी भर कुकुम से पूजा करोगे तो भी वह सिन्दूर नही बन सकता–

"रोने से तो दुःख दूर नहीं होने का,
आँसू से पत्थर चूर नहीं होने का,
जीवन भर चाहे तुम कुंकुम से पूजो–
काला काजल सिन्दूर नहीं होने का!" [2]

'अन्तिम दिन' कविता में कवि 'तरुण' का मृत्युबोध झलकता है। 'तरुण' कहते है कि जब मैं चिता पर जलूंगा– उस दिन मेरे सारे गान मौन हो जायेंगे, मेरे प्राण मुक्त हो जायेंगे, मेरी नश्वर देह भस्म हो जायेगी और फिर–

"अश्रु कुछ दृग से झरेंगे,
कुछ हृदय आहें भरेंगे,
सृष्टि चलती ही रहेगी यह बिना क्षण एक रुक कर!
जब जलूँगा मैं चिता पर!" [3]

एक अन्य कविता 'एक दिन' मे भी कवि का मृत्युबोध दृष्टव्य है। कवि 'तरुण' कहते है कि एक दिन जब मैं अपने हृदय मे अव्यक्त विषाद लिए मिट जाऊँगा तब इस ससार में चार दिन तक मेरी धुधॅली–सी याद ही शेष रह जायेगी जैसे जलती बाती से निकली धुएँ की क्षीण रेखा दीपक के बुझ जाने के बाद तिमिर मे कुछ देर डोल कर मिट जाती है उसी प्रकार मैं भी मिट जाऊँगा–

"तप्त बाती से निकली क्षीण–
धूम्र की रेखाएँ ज्यों दीन–
तिमिर में मिट जाती कुछ डोल,
दीप के बुझ जाने के बाद!" [4]

कवि 'तरुण' के काव्य के गीत अनुभूति की सत्यता और तीव्रता के कारण अत्यन्त मार्मिक ढंग से व्यक्त हुए हैं। इन गीतों मे कवि के मन की वेदना साकार हो उठी है और पाठक को स्व–अनुभूति में निमग्न करते हैं–

"कोई हमको लाकर दे विष का प्याला–
जिसमें उठती हो लाल धधकती ज्वाला!
चुपचाप उसे पी ले; तो अन्यायी का–
इससे बढ़कर सत्कार नहीं होने का!" [5]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' जिज्ञासा, पृष्ठ 268
2 वही, 'उपचार', पृष्ठ 60
3 वही, 'अन्तिम दिन', पृष्ठ 149
4 वही, एक दिन, पृष्ठ 133
5 वही, 'मर्म–भरी पीडा मे', पृष्ठ 138

'मुक्ति की ओर' शीर्षक कविता में कवि अपने हृदय को इस निर्मम जग से, कुछ देर के लिए, कही दूर जाने के लिए आग्रह कर रहा है। इस संसार में तो मोती–सा भी झुलस कर भस्म हो जाता है, आत्मा का आलोक निष्फल ही खो जाता है। मन की अभिलाषा का चॉद हस्तगत तक नहीं हो पाता। भोला–सा मानव रोते बच्चे–सा सो जाता है। कवि उस स्थान पर जाना चाहता है जहॉ कोई हृदय, दूसरे को न छले–

"मोती–सा मन यहाँ झुलस कर हाय, भस्म हो जाता रे,
आत्मा का आलोक यहाँ तो निष्फल ही खो जाता रे,
अभिलाषा का चाँद हस्तगत यहाँ नहीं हो पाता रे,
भोला मानव रोता–रोता बालक–सा सो जाता रे,
वहाँ चलो रे, जहाँ कभी भी हृदय, हृदय को नहीं छले,
चलो हृदय, इस निर्मम जग से दूर– कहीं कुछ देर चलें।" [1]

प्रेम का रस एक ऐसा रस है जो अनिर्वचनीय है। यह वह आनन्द है जिसे शब्दो मे बॉधना असम्भव है, सिर्फ अनुभव ही किया जा सकता है। यह वह प्यास जो कभी समाप्त नहीं होती। यही तो जीवन की मधुर भाषा है, प्रेम–रस से तराबोर जो सारे मिथ्या ज्ञान को डुबोने आती है। यही तो यौवन की मधुर क्रीडा है जो युगयुगान्तरों से हृदय में सोई प्यास को जगाती आती है–

"आओ रंगिणी आओ, जीवन में आओ!
सूखी धरती को स्वर्ग बनाती आओ!

x x x x x
रतनारे, श्यामल, श्वेत, अमिय–विषधारी–
मादक नयनों की चितवन से मन हारी–
ज्ञानी का मिथ्या ज्ञान ढ़हाकर पल में;
जीवन की सोई प्यास जगाती आओ!" [2]

'वृन्दावन के यमुना–तट पर' शीर्षक कविता मे कवि ने यमुना के तट पर प्रेम की वशी बजाते रास रचाते मुरलीधर को देख रहा है। गोपियो के घेरे के मध्य में कृष्ण खडे हैं और वंशी की ध्वनि के साथ नृत्य आरम्भ हो रहा है। यह कविता हमें रीतिकालीन कृष्ण–काव्य का स्मरण दिलाती है–

"कृष्ण खड़े हो गये मध्य में, खड़ी गोपियाँ घेरे,
वंशी–स्वर के साथ हुए आरम्भ, नृत्य के फेरे,
छम्–छम् पायल रण्–रण् कंकण, बजी स्वर्ण किंकिणियाँ,
चमक उठी हारों की हिलती रंग–बिरंगी मणियाँ,
मन्द–ठुमकते गोरे–गोरे चरणो की छवि सरसी,
वृन्दावन के यमुना–तट पर बजी प्रेम की वंशी!" [3]

बाल–जीवन का भी निरीक्षण भी कवि ने किया है। 'हिमांचला' नामक सर्वप्रथम कविता में 'तरुण' जग की तुलना शिशु से करते हुए प्रकृति को मॉ बताते हैं–

---

1. 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'मुक्ति की ओर', पृष्ठ 274
2. वही, 'रंगिणी', पृष्ठ 156–157
3. वही, 'वृन्दावन के यमुना–तट पर', पृष्ठ 277.

"ज्यों, जग–शिशु को पिला एक स्तन
खोल रही दूसरा प्रकृति–माँ।" [1]

यहाँ जग की तुलना शिशु से करने से गीतकार 'तरुण' का शिशु प्रेम प्रमाणित होता है। कवि का माता के प्रति और साथ ही प्रकृति के प्रति भी अनन्य ममत्व यहाँ स्वयं सिद्ध है। 'शिशु को चाँद दिखाती माता' नामक गीत मे भी व्यंजनात्मक रूप में कवि शिशु के माध्यम से इस धरती पर मनुष्य की स्थिति का उल्लेख करते हुए शिशु की विभिन्न शारीरिक गतिविधियो का चित्रण करता है। जब माँ शिशु को चन्द्रमा दिखाती है तो वह उसे लेने का भाव जताते हुए किलक–किलककर हाथ उठाता है और न मिल पाने पर रो उठता है तथा माँ की थपकी पाकर सो जाता है–

"शिशु को चाँद दिखाती माता!
खिली चाँदनी कुन्द–कुसुम–सी, मधुर पवन लहराता आता!
शिशु को चाँद दिखाती माता!" [2]

वर्ड्सवर्थ की 'शिशु मानव का पिता है' नामक काव्य–पंक्ति इस सन्दर्भ में हठात् ही याद आ जाती है। 'तरुण' के पास ऐसी सूक्ष्म, मार्मिक और समृद्ध दृष्टि है जिससे वे बच्चे के कर्म और उसकी भोली कल्पनाओ को समझ सके। 'चमक रहे अम्बर में तारे' नामक गीत मे तारों की तुलना प्रकाश के बालको से की है जो मानवों की पीडा और नियति की कटु क्रीडा को सोच कर अर्धरात्रि में करुणा के मारे सिहर उठते है–

"दूर–मरण की इस दुनियाँ से, वे प्रकाश के बालक सारे!
चमक रहे अम्बर में तारे!
x x x x
सोच मानवों की पीड़ा को
और नियति की कटु क्रीड़ा को,
अर्द्धनिशा में सिहर–सिहर उठते हैं वे करुणा के मारे!
चमक रहे अम्बर में तारे!" [3]

'पूनो का चाँद' गीत मे भी चाँद के माध्यम से आँगन मे किलकते हुए नटखट मुन्ने का सुन्दर और जीवन्त चित्रण हुआ है। अपने कार्य मे लीन माँ शिशु कभी अपने नन्हे मांसल हाथो से क्रीडावश मारकर भाग जाता है और बचने का निष्फल प्रयास करता है, कभी वह आँगन मे उल्टा–सीधा मस्त, निश्चित पडा रहता है तथा गेहूँ या चावल की कोई डलिया हाथ लगने पर उसे खींच कर बिखरा देता है, तो कभी आँगन मे किलकारी भर–भर कर मधु लार टपकाता फिरता है–

"यह चाँद गगन में एकाकी–
हँसता लगता कितना सुन्दर!
पीपल के छितरे शिखरों से
कढ़ता लगता कितना मनहर!–
x x x x
यदि हाथ पड़ गई गेहूँ की

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'हिमाचला', पृष्ठ 169
2 वही, 'शिशु को चाँद दिखाती माता', पृष्ठ 311
3 वही, 'चमक रहे अम्बर मे तारे', पृष्ठ 138–139

या चावल की कोई डलिया,
तो खींच उसे लघु हाथों से–
बिखरा देता हो सब कण–कण,
जैसे, नीले नभ में तारे!"[1]

'सरला' नामक कविता में एक आठ बरस की कन्या सरला का चित्र है इसके साथ ही नवविवाहित पति–पत्नी के मधुर संयोग की पृष्ठभूमि और नवयुवती के शृगार और सौन्दर्य की भी सुन्दर झलक मिल जाती है। दिन भर खिल खिल हँसती फिरती, गोरी–गोरी, आठ बरस की सरला बहुत हँसोडी है। उसकी बडी–बड़ी काली ऑखे हैं, पंचमी के चॉद–सरीखा भाल तथा लम्बे चिकने, उज्ज्वल और घुंघराले केश है। सरला बड़ी नटखट होने के कारण घर के सभी सदस्यों की लाडली भी है–

"सरला–आठ बरस की कन्या, गोरी–गोरी, बड़ी हँसोड़ी,
खिल् खिल् हँसती–फिरती दिन भर–
चप्पल पहने फट्फट् करती, फिरती रहती है घर–बाहर,
बड़ी–बड़ी काली आँखें हैं,
भाल, पंचमी–चाँद–सरीखा– सहज प्रसन्न, स्निग्ध, शुभ्रोज्ज्वल!
लम्बे, चिकने, काले, कोमल, घने, सुगन्धित–
लहराते रहते हैं उज्ज्वल केश बड़े सुन्दर घुंघराले!
छोटी और बड़ी नटखट है– बड़ी लाडली है घर–भर की!
स्वस्थ, छरहरी, कोमल काया– स्नेह, रूप, सौरभ की छाया!"[2]

'प्रथम किरण' की तुलना में 'हिमांचला' की काव्य–कला में अधिक निखार आ गया है। भाषा सर्वत्र भावानुरूपिणी है। प्रसाद गुण तो सर्वत्र है ही, कोमल भावो को व्यक्त करने के लिए माधुर्यगुण–सम्पन्न भाषा और कोमलकान्त पदावली का प्रयोग हुआ है–

"पाटल–पंखुरी पर मोती–सा स्वाभाविक ढरका हुआ नया!
मोती का–सा मन टूट गया!"[3]

तो पौरुषवर्ण स्वर में लिखे गये उद्‌बोधन गीतों मे ओजपूर्ण सम्पन्न भाषा का प्रयोग मिलता है–

"लहरें है बहुत उत्ताल,
नभ का फूटता है भाल,
जर्जर, पोत के हैं पाल,
फैला, अन्धकार विशाल!"[4]

गीतो की अभिव्यजंना कलात्मक है, कथन–भंगिमा में वक्रता है, भाषा में लाक्षणिकता है और अप्रस्तुत विधान मौलिक है। ग्राम्य और घरेलु वातावरण को चित्राकित करने के लिए जन भाषा का प्रयोग किया है–

"एकाकी घर, सूना आँगन
ज्वर से पीड़ित बच्चे का तन!"[5]

1 तरुण–काव्य ग्रन्थावली' पूनों का चॉद', पृष्ठ 195
2 वही 'सरला', पृष्ठ 315
3 वही 'मोती का–सा मन टूट गया', पृष्ठ 135
4 वही, 'ओ, चट्टान से मल्लाह' पृष्ठ 77
5 वही, 'ग्राम–विरहिणी दीप जलाती', पृष्ठ 219

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

समास–प्रयोग से भाषा और भी अधिक प्रवाहमय और माधुर्यगुण युक्त हो जाती है–

" मृदु–सुमन–मधु–गन्ध–सुरभित, धीर–सुखकर–पवन–पुलकित
कुन्द–उज्ज्वल चाँदनी युत, नव वसन्ती यामिनी–सी–
छा रही हो तुम, हृदय में!" [1]

सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए लाक्षणिक शब्दावली, प्रतीको और बिम्बों की योजना है–

" लिए कोमल कण्ठों मे गीत–
चलूँ कुछ धरा के विपरीत,
शक्तियाँ परखूं अपनी आज, नाथकर विषमय काला नाग!
जाग, मेरे जीवन की आग!" [2]

'हिमाचला' के गीतों में अप्रस्तुत विधान अनूठा, मोहक एवं भावभिव्यक्ति की दृष्टि से अनूठा है। कवि की सूक्ष्म–निरीक्षण शक्ति ने अछूते उपमानों की योजना की है। यदि टूटता हुआ तारा दुखिया के नेत्रों से टपकते ऑसू के समान लगता है तो मुस्कुराती ऊषा प्रथम मधु–निशा में लजाती कुल–वधु के समान प्रतीत होती है–

" प्रथम–मधु निशि में लजाती,
चन्द्र मुख पर में छिपाती–
लाजवन्ती कुलवधु–सी नव उषा मुसका रही है!
लो, निशा अब जा रही है।" [3]

'हिमांचला' में अलंकारों का प्रयोग प्रसगानुकूल है। प्रकृति–चित्रण मे कवि ने प्रकृति को चेतन मानते हुए अनेक स्थलों पर मानवीकरण अलंकार का प्रयोग किया है। रात्रि–मॉ के समान पीडित जग को कष्टों से मुक्त करती है, ऑचल फैलाकर मॉ की गोद की भॉति अपनी नीरवता मे जग के प्राणियों को सुलाकर उन्हें चिन्तामुक्त कर देती है–

" धवल चाँदनी का कोमलतम
अपना आँचल डाल रुपहला–
सुला रही चिर–पीड़ित जग को
स्नेहमयी रजनी हिमांचला!" [4]

'दान' कविता में दीपक का रूपक बाँधा है–

"मेरी काया तो माटी का दीपक , जो नश्वर कहलाती,
तनिक स्नेह में डूवी जिसमें पड़ी हुई नन्हीं–सी–बाती!
तुमने जीवन–ज्वाला देकर, जड़ मिट्टी को प्राण दे दिया!" [5]

उत्प्रेक्षा, अन्योक्ति, व्यतिरेक, दृष्टान्त अलकारों का भी यथा–प्रसग प्रयोग किया गया है। 'पंछी, पिजरे के तोड़ द्वार' मे अन्योक्ति द्वारा प्राणियों को माया–मोह का पाश तोड स्वतन्त्र–चेत्ता और स्वाधीन बनने का उद्‌बोधन दिया गया है–

"तू मुक्त अभी हो सकता है,

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्राण , तुम मेरे हृदय में', पृष्ठ 294
2 वही, 'जाग, मेरे जीवन की आग', पृष्ठ 84
3 वही, 'लो, निशा अब जा रही है', पृष्ठ 210
4 वही, 'हिमाचला', पृष्ठ 169
5 वही 'दान', पृष्ठ 60

अरुणोदय में खो सकता है,
झटका देकर के तोड़ उड़े पिंजरे को कर यदि तार–तार!
पंछी, पिंजरे के तोड़ द्वार!" [1]

'हिमांचला' की 'चिड़िया' शीर्षक कविता मे ध्वनि–बिम्बों की सहायता से कही उनकी चहचहाहट तो कहीं उनके फुर्र से उड़ने का बिम्ब प्रस्तुत किया गया है–

" देखो, करती चीं–चीं–चीं–च्वट–
लग रही हैं सब मिल कर रट,
अर्र्र्र्, यह क्या हुआ अचानक,
पलक मारने में लो झटपट–
फुरफुर–फुर्र्र् कर नभ में दल की दल उड़ गई सकल!
खेल रही चिड़िया चंचल!" [2]

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का मन्तव्य है– *"'प्रथम किरण' मुझ पर अपनी अछूती आभा छोड़ गई थी। 'हिमांचला' ने उस प्रकाश–रश्मि की ओर फिर से आकृष्ट किया। आपके अन्तरंग में एक नैसर्गिक और कोमल–हृदय कवि का निवास है। उसकी वाणी खूब सधी हुई और मधुर है।"* [19]

श्री जैनेन्द्र कुमार जैन 'तरुण' की कविताओ में नहा ही लिए– *"कविताएँ ऐसी लगी जैसे हल्की मीनी फुहार। चित जैसे नहा आया और हरा हुआ।"* [20]

डॉ0 शान्ति प्रिय द्विवेदी कहते हैं– *"शब्द–चित्र देने में आप एक कुशल चित्रकार हैं। चित्रण के अतिरिक्त सांगोपांग विन्यास की दृष्टि में भी प्रत्येक कविता सुगठित और रसोद्भावक है। सभी मुक्तकों में आदि, मध्य और अन्त का क्रमिक और जीवन्त निर्वाह हुआ है। आपने हिन्दी काव्य में जिस सरलता, मधुरता और स्वाभाविकता का मर्मोद्रेक किया है वह वर्ड्स्वर्थ की याद दिला देती है। यदि वर्ड्स्वर्थ जीवित होता तो वह आपकी कविताओं से बहुत प्यार करता।"* [21]

डॉ0 देवराज का मत है– *"'हिमांचला' देखकर आनन्दपूर्ण विस्मय हुआ। इतनी प्रौढ़ और सुलझी हुई अभिव्यक्ति कम देखने को मिलती है। भावों में सहज सौष्ठव और कल्पना में सहज नवीनता है।"* [22]

श्रीमती कमला चौधरी कहती है– *"इस प्रकार के स्वाभाविक चित्रण वही कवि अपनी कविताओं में कर सकता है, जिसके पास अनुभूतियाँ हों, जिसका हृदय भारतीय संस्कृति में आस्था रखता हो। ··· अपनी सभ्यता के साधनाहीन कवियों के लिए ऐसे चित्र उपस्थित करना असम्भव है।"* [23]

श्री हरिविलास शर्मा के उद्गार हैं– *"हिमांचला को मैं नवरत्नी रचना कहूँगा।.... 'हिमांचला' में कवि ने भावों में कई स्थलों पर नये जीवन के व नये समाज के दर्शन कराकर अपनी प्रतिभा से चेतना दी है जिससे निर्माण का पथ प्रशस्त हो गया है।"* [24]

प्रो0 कल्याणमल लोढ़ा के अनुसार– *"कवि 'तरुण' का काव्य भी तारुण्य की सर्जनात्मक शक्ति और स्फूरणा से जीवन की विराटता का एक संश्लिष्ट चित्र है।... कला जीवन की अर्थवत्ता की सार्थक खोज है। 'तरुण' का काव्य इसी अर्थवत्ता की खोज का काव्य है।....... यही उसकी अस्मिता की खोज है।"* [25]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'पछी,पिंजरे के तोड द्वार', पृष्ठ 82.
2 वही, 'चिडियाँ', पृष्ठ 209

डॉ0 शिव कुमार मिश्र का कथन है– *"हिमांचला' में 'तरुण' पूरी तरह जीवन की धारा के साथ बहे। उमंग तथा उल्लास से पूर्ण ये कविताएँ व्यक्ति को जीवन की विभीषिकाओं से लोहा लेने को उत्प्रेरित करती हैं। कर्मठ जीवन की बड़ी ही सशक्त अभिव्यक्ति इन कविताओं में हुई है। 'हिमांचला' कवि द्वारा देखे और भोगे गये जीवन के स्वस्थ और आवेगपूर्ण प्रवाह की बानगी है।"* [26]

डॉ0 बुद्धसेन नीहार के अनुसार– *"विद्रोह की आग और सर्जन का राग ऐसी कविताओं को पढ़कर हमें काजी नजरुल इस्लाम, 'निराला' और 'नवीन' की याद आती है, माखनलाल चतुर्वेदी की तस्वीर सामने आ जाती है। 'तरुण' जी इन्हीं विद्रोही कवियों की परम्परा में आते हैं।...... 'तरुण' जी भारत के सच्चे यथार्थवादी और क्रान्तिकारी कवि है।*

कवि 'तरुण' में यह राग–तत्व उसे मानव–प्रकृति से ही नहीं जोड़ता, प्रत्युत, मानवेतर प्रकृति और सम्पूर्ण विश्व से भी।" [27]

'हिमांचला' के गीतों में विषय वस्तु की विविधता है। इस संकलन के अधिकाश गीत उद्‌बोधन–गीत है। इन गीतो में कवि का युवा–हृदय सम्पूर्ण उद्वेलन के साथ मुखर हुआ है। कवि की वाणी मे ओज है, आवेग है, वह ललकारना जानती है, रुकना या ठहरना नही। यहॉ संघर्ष और विद्रोह के साथ ही प्रेम और सौन्दर्य के मधुर गीतों का भी प्रस्तुतिकरण हुआ है। कवि का नारी–प्रेम, ग्राम–वधू का प्रेम, राधा–कृष्ण का प्रेम, प्रकृति प्रेम, ग्रामीण–जीवन से प्रेम, अबोध शिशुओं से प्रेम– प्रेम का विस्तृत फलक मौजूद है। कुल मिलाकर 'हिमांचला' कवि के युवा–मन की अभिव्यक्ति है।

आँधी और चाँदनी

'प्रथम किरण', 'धूपदीप' और 'हिमाचला' के बाद कविवर रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' का चौथा काव्य संग्रह है– 'ऑधी और चॉदनी' जो सन् 1975 में प्रकाशित हुआ। 'हिमांचला' के प्रकाशन के लगभग 20 वर्ष पश्चात प्रकाशित इस सग्रह मे कवि की नई–पुरानी 85 मौलिक रचनाएँ सकलित है।

कवि ने 'ऑधी और चॉदनी' को अपने 'बेटे 'मुनुआ (अमित)' को समर्पित किया है और दो पृष्ठो में 'अपनी बात' कह दी है। उसने विश्वास व्यक्त किया है कि ***"इस कृति में अनुभूति, विचार और अभिव्यक्ति के नाना आरोह–अवरोह और प्रयोग–परीक्षण स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो सकेंगे।"*** [28]

प्रस्तुत संग्रह के शीर्षक की चर्चा करते हुए कवि ने स्वय संकेत दिया है कि ***"'आँधी और चाँदनी' शीर्षक का निर्धारण अपने सुदूर अतीत जीवन में मेरे जिए और भोगे हुए एक ऐसे गम्भीर व सम्वेदनमय प्राकृतिक दृश्य व स्थिति से प्रेरित है जो मेरे व्यक्ति–जीवन व युग–जीवन की अन्तरंग व संश्लिष्ट मर्म–वेदना का सफल–सार्थक ढंग से वाहक व व्यंजक है: घोर मरुस्थल के प्रचण्ड ग्रीष्म की एक अर्धरात्रि के चाँदनी–धुले उद्दाम अंधड़ वाले विजन के खुले आकाश के नीचे मैं बचपन में कभी सोया था। आँख खुलने पर जो प्रचण्ड–कोमल, कटु–मधुर प्राकृतिक दृश्य सामने था वह तब से बिम्ब बन कर वर्षों मेरी चेतना में कहीं खुँसा–पड़ा कसमसाता रहा। वह अब मेरे काव्य–संग्रह का विवक्षित शीर्षक बना– आज से वह भी मुक्त और मैं भी मुक्त।"*** [29]

प्रस्तुत काव्य संग्रह तीन भागों में विभक्त है– 'ऑधी', 'मुक्तक' और 'चॉदनी'। 'आँधी' में 55 कविताऍ 84 पृष्ठों में संकलित है, 'मुक्तक' संख्या में 49 हैं, 'चॉदनी' में 30 कविताऍ 41 पृष्ठो मे है।

'ऑधी और चॉदनी' काव्य सग्रह के सन्दर्भ में अनेक विद्वानो के विशिष्ट अभिमत आपके सम्मुख रख रही हूँ। 'ऑधी और चॉदनी' की 'अपनी बात' शीर्षक भूमिका से कवि रामेश्वर लाल खण्डेलवाल का आत्मकथन– ***"इस रचना में मेरे अस्तित्व का समस्त कटुतम और मधुरतम, और इन दोनों सीमान्तों के बीच पड़ने वाला सारा आत्मद्रव समाविष्ट है। इस दृष्टि से यह रचना संभवतः मेरी काव्य–चेतना के प्रायः सभी प्रवाहों, उर्मियों, स्पन्दनों अन्तरालों व आयामों का अद्यतन प्रतिनिधित्व करती हुई जान पड़ सके।"*** [30]

स0 ही0 वा0 अज्ञेय कहते है– *"गीत रचनाएँ ही सबसे प्यारी लगी। उनमें एक मुग्ध भाव–प्रवणता है।... तरुण जी के गीतों में कई ऐसे हैं जिन्हें फिर–फिर गुनगुनाने का मन करे। यह अपने आप में एक कसौटी है जिस पर फिर यह तर्क नहीं टिकता कि 'गीत की विधा अब एक पिछड़ी विधा हो गई है'।*

'तरुण' जी की प्रतिभा की चान्दनी में हम रम कर नहाए।" [31]

श्री वीरेन्द्र कुमार जैन कहते है– *"... विस्मित हूँ कि तुम्हारी सौन्दर्य–चेतना मेरे साथ कितनी तदाकार है। वैसी ही कीट्सियन (Keatsian) विदग्धता, प्रगाढ़ता, और वासना तुममें भी है। तुम्हारे बारीक (Vivid) मीनाकारी वाले सौन्दर्य–चित्रों को पढ़कर कीट्स की अति आलोचित कविता 'एण्डीमियान' याद आती रही। वह कविता मुझे बहुत प्रिय है मेरे मन के बहुत नजदीक है।...*

इस संग्रह में तुम्हारें जीवन की तमाम आँधियाँ मानो अपने से ही हार कर स्वयं चाँदनी हो खिल पड़ी हैं। और इस चाँदनी में तुम मूर्छित न हुए, युग की विभीषिका से टीस उठे हो। अपनी ही युक्त

वेदना में से तुमने विश्व–वेदना का आश्लेष किया है।.... तुम्हारा यथार्थ सही मायने में भोगा हुआ है, वह फैशनेबल जनवादी कवियों की तरह तराशा हुआ और बुनावटी–बनावटी नहीं है। संस्कृत के ध्वनि–सौन्दर्य और लालित्य से लगाकर छायावाद के रोमान और कल्पक उड़ान को अपने में समेटे, तमाम युगीन काव्य–मोड़ों से निपटता हुआ, तुम्हारा कवि आधुनिक काव्य की गूढ़ संकेतात्मकता तक–यकसा यांत्रित है। तमाम धाराऐं तुममें संगमित हैं, और तुम्हारी कविता एक महाधारा जैसी गर्भवान लगती हैं। सबसे अधिक मुग्ध हुआ मैं तुम्हारी अभिव्यक्ति की सच्चाई पर। एक बहुत सच्ची, निश्छल, सरल आत्मा का सहज सौन्दर्य–प्रवाह है– ये कविताएँ....." [32]

डॉ0 वेदप्रकाश वटुक, शिकागो (अमेरिका) से लिखते है– *"मैं यह बताना चाहूँगा कि आपकी काव्य–कृति 'आँधी और चाँदनी' का सबसे पहला 'आफिशल' ग्राहक होने का गौरव मुझे प्राप्त है। मैं उसकी एक प्रति 'रिलीज' होने की तिथि से एक दिन पहले ले आया था और उस रात पूरा रसास्वादन कर गया था। सन् 52 से आज तक का सम्बन्ध स्नेह, आदर, श्रद्धा का एक बारगी आ गया था– सघन रूप में। 'आनन्द' से परे काव्य का कोई रूप हो सकता है। लेखक, पाठक/श्रोता के लिए। वह आपने दिया, इसका नतमस्तक कृतज्ञ हूँ।"* [33]

डॉ0 सत्यवीर सिह कहते हैं– ***"'दिनकर' जैसा विध्वंस मचाने वाला आह्वान, 'नवीन' जैसा तबाही मचाने वाला आक्रोश, गिन्सबर्ग (हाउल) जैसी उत्तेजना और झुंझलाहट, विलियम बरोज (नेकेड लंच), जैक केरुवाक, कोर्सो और जार्ज आर्वेल जैसा विद्रोह 'आँधी और चाँदनी' में मिलता है।"*** [34]

'तरुण' आधुनिक जीवन–बोध के कवि हैं। इनकी कविताओं में वर्तमान युग की विडम्बनाओं, अन्याय, अत्याचार और विद्रूपताओं से पैने सत्रास को स्थान मिला है। कवि के हृदय की पीडा काव्य के माध्यम से उपस्थित हुई हैं।

डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त के अनुसार– ***"आधुनिक युग यांत्रिकता, औद्योगिकरण, भौतिक समृद्धि, हृदय की संकीर्णता और मूल्यों के विघटन का युग है। बाह्य सम्पन्नता के पीछे आत्मा की दरिद्रता झाँक रही है, तडक–भड़क के नीचे मानवता कराह रही है। विज्ञान ने जिस स्वर्णिम आभा का विश्वास दिलाया था, वह मुलम्मा सिद्ध हो रही है। लोगों के नेत्रों पर से भ्रांति का पर्दा उठ रहा है। इस मोह भंग की स्थिति में निराशा, कुण्ठा, संत्रास का वातावरण बनना स्वाभाविक ही है।"*** [35]

डॉ0 अजब सिंह के शब्दों में, ***"'तरुण' की कविताओं में स्वच्छन्दतावादी, नव–स्वच्छन्दतावादी लहर आज भी तरंगित है। आधुनिक कवियों में स्वच्छन्दतावादी, नव–स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की दृष्टि से रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' काफी सशक्त एवं प्रभावशाली कवि हैं।"*** [36]

डॉ0 विनयमोहन शर्मा के शब्दों में ***"कवि ने अपने उस भोगे हुए जीवन को अभिव्यक्ति दी है जो कभी झंझावात में हहर उठा है और कभी चाँदनी की मधुरतम रातों में सिहर उठा है।"*** [37]

डॉ0 रामलखन शुक्ल ने कवि के आधुनिक भाव–बोध को स्पष्ट करते हुए लिखा है– ***"जहाँ छायावादी कवियों में कल्पना का अतिशय और अत्याधिक भाव प्रवणता है, वहाँ कवि 'तरुण' यथार्थ का अंचल पकड़कर अपनी संवेदना को रूपायित करते हैं... उन्होंने यांत्रिक एवं औद्योगिक विकास क्रम को सूक्ष्मता से देखा और परखा है तथा उसे आत्मसात करने का भी प्रयत्न किया है। फलतः उनका जीवन–बोध अधिक व्यापक हो सका है तथा आधुनिकता से अनुप्राणित है।"*** [38]

'ऑधी और चॉदनी' संग्रह में आधुनिक जीवन–बोध की मार्मिक अभिव्यक्ति करते गीत, मुक्तक और कविताएँ सकलित हैं। जीवन की यातना और संघर्ष को वर्तमान द्वन्द्वो और विसंगतियो से अनुप्राणित नये भाव–बोध से सपृक्त किया गया है।

'शोक–समाचार' में कवि ने यह घोषणा की है कि उसके गीत मर चुके हैं। उन्हें लू लग गई है, वे बचाए नहीं जा सके। एक रूप से यह सर्वथा सत्य है। अब गीतो का युग बीत चुका है। निरन्तर विज्ञान की ओर बढते, अनेक समस्याओं से चतुर्दिक घिरे हुए उद्योग–युग के इस जीवन मे गीत के लिए कही भी साँस लेने की जगह भी है। इस सन्दर्भ में कवि की आन्तरिक वेदना की अभिव्यक्ति 'शोक–समाचार' बनकर अनूठे ढंग से प्रकट हो गई है–

"बिजली की शिरोरेखाएँ खींच–खींच कर–
नक्षत्रों के अक्षरों में, मेरी ऊष्मिल साँसों ने
जो गीत लिखे थे–
वे अब नहीं रहे!" [1]

'मैं गा न सकूंगा' में भी कवि के विषाद और खिन्नता का स्वर मुखरित हुआ है। कवि ने यहाँ एक ऐसे बिम्ब का प्रयोग किया है, जो मानव की विवश स्थिति और घुटन को सजीव ढंग से मूर्त करता है–

"मेरे नयनतारे की किरण की पगतली में
कहीं कोई कांटा चुभ गया है।
बिजली की कौंध–कड़क से आहट–चमत्कृत
चिड़िया की नन्हीं आँख–सा
मैं भीत–स्तब्ध रह गया हूँ
मैंने जाने क्या देख लिया है!
कोई प्रचण्ड हिम–लहर–सी निकल गई है मुझ पर से–
मैं काठ–मारा–सा रह गया हूँ!" [2]

जीवन मे जो विडम्बनाएँ, विकृतियाँ और विभीषिकाएँ 'तरुण' ने पिछली दशाब्दियों मे देखी व झेली है, उन्होने उनके कवि का स्वर वदल दिया है, इस तथ्य का बोध 'तरुण' को है और सकलन की प्रथम पक्ति मे ही वे इस बात की घोषणा भी कर देते है। कवि का मानव गर्व–स्फीत नही है, वरन् उसे अहसास है कि वह प्रकाश, मुस्कान और प्रभात का कवि नहीं है, वह तो सजल चंपई धूप, साश्रु मुस्कान तथा अवसाद–करुण सूर्यास्त का कवि है। अतिम पंक्तियॉ मन पर अपना स्थाई प्रभाव छोड जाती हैं–

"अब तो हूँ मैं–
तहों–जमें सिलहरी बादलों से छनते,
शिशिर के अवसाद–करुण सूर्यास्त का कवि!" [3]

कश्मीर की घाटी में या रंगीन घाटियों में , सौन्दर्य के अनन्त प्रसार के बीच, पलते हुए अभाव, दुःख–दुरवस्था को देखकर कवि की ममता रो उठी है। चिर अभावग्रस्त मानव के मुख–पटल पर निराशा, अवसाद, दैन्य और श्रम की काली छाया स्पष्ट छलकती है–

"चिर अभाव–मारे श्रम–हारे,
तरुण, वृद्ध, बालक बेचारे!
है तुषार–हत कमलिनियों–सी

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'शोक समाचार', पृष्ठ 2
2 वही, 'मै गा न सकूँगा', पृष्ठ 3
3 वही, 'घोषणा', पृष्ठ 1

कामिनियाँ लगती खोये—श्री।
दुरवस्थित, जर्जर, औ' निर्धन—
गली, चौक, छाजन, घर—आंगन।" [1]

डॉ0 कुमार विमल के शब्दों में— ***"सचमुच आधुनिक जीवन—बोध पर निर्भर ये कविताएँ इस युग की गहन सांस्कृतिक पीड़ा की सच्ची संवेदना को अभिव्यक्त करती है।"*** [39]

समसामयिकता का बोध कवि 'तरुण' के रचना संसार की अनुपम विशेषता है। कवि को लगता है जैसे चॉदनी ऑधी में फॅस गयी है इसलिए इनकी कविताओं में मानव—मन को झिझोड़ देने वाली, तिलमिला देने वाली वाणी में समाज के अस्थिपंजर में कुलकुलाते कीडों से साक्षात्कार कराया गया है। परिस्थितियों के दबाव और कृत्रिम जीवन मे फॅसे मानव के प्रति ग्लानि प्रकट करते हुए 'तरुण' कहते हैं—

"हम जीवितों की तरह कभी जिये ही नहीं;
हमें बलात् जिलाया गया!
x x x x x
गंध—भीने चाँदनी पवन—से हम कभी चले ही नहीं
कानून की धारा—उपधारा—
और परिच्छेद के हण्टर से हमें चलाया गया!" [2]

कवि ने राजनैतिक षडयन्त्रकारियो, कूटनीतिज्ञो एवं आडम्बरकारियों आदि सभी के चेहरों का पर्दाफाश किया है। वह आडम्बरमय जीवन से ऊब गया हैं, आज की भौतिक आपाधापी और यान्त्रिकता की तीव्र ऊष्मा को त्याग कर जिन्दगी के गद्य में छन्द और पद्य का अनावरण करना चाहता है। फूलो के मकरन्द और स्वर्ग के रसमय आनन्द की कामना करता हुआ कवि भौतिकता के प्रति विद्रोह भाव जाग्रत करता दृष्टिगोचर होता है—

"कागजी इस फूल में मकरन्द लाओ,
जिन्दगी के गद्य में कुछ छन्द लाओं,
भेज कर सब वायु—यानों को गगन में—
भूमि पर सब स्वर्ग का आनन्द लाओ!" [3]

डॉ0 कुमार विमल ने उचित टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए लिखा है— ***"अपने 'अस्तित्व के समस्त कटुतम और मधुरतम' को इतनी मार्मिक अभिव्यक्ति देना आसान काम नहीं है। 'मन के मोतियों के सौदागर' इस कवि के गीत कभी भी मौन नहीं होगें।"*** [40]

वर्तमान मानव की दशा बिजली के तारो के बीच उलझी पतग जैसी हो गई है। उलझन, कुण्ठा और असहायता के बीच लटक रहा मानव—रूपी पतग अपनी ही रगीन तीलियो से स्वय की पसलियॉ तोड रहा है—

"सड़क के किनारे, बिजली के तारों में ही
उलझकर रह गया—
अपनी ही तीलियों से अपने रंगीन कागज की

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'कश्मीर की घाटी मे', पृष्ठ 129
2 वही, 'आत्मकथा', पृष्ठ 53
3 वही, 'मुक्तक', पृष्ठ 55

पसलियों को भेदता–सा।" [1]

कवि के अनुसार बीसवीं सदी का आदमी फ्रायड का काम–कार्यालय और डार्विन का जीवित वनमानुष बन गया है। निहित स्वार्थों, रुढिगत व्यवस्था, शोषको, आडम्बरकारियो तथा नकली चेहरे वालो एवं गिरगिट की तरह रंग बदलने वालों– सभी के प्रति कवि ने आक्रोश व्यक्त किया है। आधुनिक मानव का एक चित्र दृष्टव्य है–

"जिसमें सब भक्ष्य, अभक्ष्य, घूस, साम्राज्य
सब चुपचाप समा जायँ,
और डकार न आये! ऐसा है यह आदमी।" [2]

'नवमानव' कविता में गहन सास्कृतिक पीडा की सच्ची अभिव्यक्ति है। कैसी विडम्बना है कि आधुनिक मानव हड़के कुत्ते से भी बदतर हो गया है और ह्वेल मछलियों ने धरती की हरित आभा को निगल लिया है–

"अब सूरज अंधा और काला हो गया है–
पर वह चुप है स्मगलर, रिश्वतखोर!
कीड़ों से खाये जाते, वासना–लोलुप, रक्त टपकाते–
हड़के कुत्तों के
जबड़ों में पहुँच गया है रे– अब यह मेरा देश, यहाँ से वहाँ।" [3]

वह आज के व्यक्ति को रिजेक्टेड रद्दी का टुकडा, विदूषक, सर्कस का जोकर, अष्टावक्र, मशीन का पुर्जा, ढोर, क्लीव और कापुरुष कहता है। मानसिक उलझनों में जकडे कापुरुष मानव की नियति दोनों सिरों पर जलते हुए सरकण्डे में बन्द कीड़े की तरह या गॉठ–गठीलीं जलने वाली रुई की–सी हो गई है। निस्सहायता के कारण उसकी स्थिति विषम हो गई है। व्यक्ति अपने आपको निरर्थक एवं दीन महसूस करने लगा है–

"कबाड़खाने का लौह–लक्कड़?
जो ऊपर से फेंक दिया गया है– रिजेक्टेड ,
धरती की वेस्ट–पेपर बास्केट में–
साहब के द्वारा फाड़–फेंक दिए गए
रद्दी के टुकड़े–सा?" [4]

<u>डॉ0 रघुवीर शरण 'व्यथित'</u> के शब्दों में– ***"मानवता, संस्कृति और विश्व–संत्रास में आत्मा की आस्था से आलोकित चिर–तरुण के काव्य–स्वर वंदनीय और श्लाघनीय है।"*** [41]

कवि वस्तुस्थिति का चित्रण मात्र ही नहीं करता अपितु उसके मूल कारणों को भी प्रकाशित करता है–

"हम–सब साधन–सम्पन्न, किन्तु मन चिर दरिद्र!
रे कहाँ रहेगा तेल , दीप के तले छिद्र।" [5]

'हम जीते तो हैं', 'सॉप–आवास समस्या', 'डेमोक्रेसी' आदि कविताऍ तीव्र एवं प्रखर व्यंग्य से भरपूर है। दीन–हीन, अस्तित्वहीन जीवन पर यह एक करारा व्यंग्य है। विश्वासघात चारों तरफ अपना राज्य स्थापित किए हैं। विश्वासघाती सर्पों के रहने के

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'जीवन पतग एक आदर्श,, एक यथार्थ', पृष्ठ 12
2 वही, 'आदमी', पृष्ठ 10
3 वही, 'नवमानव', पृष्ठ 55
4 वही, 'आदमी?', पृष्ठ 11
5 वही, 'दीप के तले छिद्र', पृष्ठ 136

लिए आस्तीन से अधिक सुरक्षित स्थान और क्या हो सकता है?

जीवन–स्थितियों पर कभी हल्का तो कभी तीव्र व्यग्य करना कवि 'तरुण' के काव्य की विशेषता है। हालातों से जबर्दस्त असन्तोष, तज्जन्य आक्रोश इसके मूल में स्थित है। उनमें मुक्तिबोध के समान सामाजिक बोध भी पर्याप्त रूप मे विद्यमान हैं। जोकर की वेशभूषा पहने व्यक्ति अपने निरर्थकता स्वयं सिद्ध कर रहा है–

"जीवन–भर–
हाथ में एक वाचाल झुनझुना हिलाते,
मुँह पर भोंपू दबा,
सिर पर एक लम्बी नोकदार टोपी लगाये,
अष्टावक्री काया पर रंग–बिरंगी कथा ओढ़े
विदुषक की तरह हम हँसते रहे और हँसाते रहे,
गाने में रोते रहे और रोने में गाते रहे!" [1]

जब जीवन के हरित सुहाग को ह्वेल मछलियॉ डकार जायें, मर्यादाओ की मेहदी बदरग कर दी जाय और सांस्कृतिक मूल्यो का अमृतघट ठोकर मारकर लुढका दिया जाय तो कवि के सात्विक हृदय से क्रान्ति की पुकार सुनना आश्चर्य नही है–

"मचने दो क्रान्तियाँ
भूचाल लाओ, ठोकरें मारो
अन्याय के विरुद्ध आवाजें लगाओं!
आकाश में दरारें डाल दो,
आज ध्वंस के लिए मेरी पूरी स्वीकृति हैं!
उड़ने दो पत्ते और टूटने दो डालियाँ,
चरमराने दो तने, उन्मूलित होने दो जड़े–
तमोमयी सत्ता की, व्यवस्था की,
ध्वंस के लिए आज मेरी पूरी स्वीकृति है–
यह लो मेरे हस्ताक्षर!" [2]

कवि की चेतना परिस्थितिजन्य आक्रोश, विद्रोह और फुंकार–भी है। क्रान्ति की प्रचण्ड ठोकर से व्यवस्था की जड़ चट्टान को तोडकर मानवता के चिर बन्दी स्वर के मुक्त होने का आह्वान कवि करता है, वह जिन्दगी से हार नहीं मानता अपितु वह तो उसका अर्क पीने को तैयार खडा है, वह अपने फेफड़ों मे हिमालय का पवन भरकर मौत के जबंडे फाडने को उत्सुक है–

"मैं– और मानूँ हार ?
जन्म से जो ऊधमी हो–
मौत के जबड़े पकड़कर,
खींच उसके दाँत सारे,
जिन्दगी का अर्क पीने को खड़ा तैयार!
मैं– और मानूँ हार!" [3]

1 'ऑधी और चॉदनी' 'आत्मकथा', पृष्ठ 53
2 वही, 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 28
3 वही, 'जीवन तीन स्थितियॉ', पृष्ठ 29

'तरुण' के काव्य में जिजीविषा–बोध की गहन अभिव्यक्ति है। कवि की ज्योतिमयी आस्था विषाक्त, निराश और कुण्ठाग्रस्त परिवेश में भी सतत् जगमगाती रहती है–

"पर धूलिसात् मेरी पंखुरियों में
कोई जिजीविषामयी हठी मादक गंध–सा
रह जाने वाला
शेष और अमिट फिर भी कुछ है;
है, कुछ ऐसा है!" [1]

डॉ0 सत्यवीर सिंह के शब्दों में– ***"विद्वानों ने जिसे जीवन की पुनर्रचना कहा है, 'आँधी और चाँदनी' उसका सुन्दर उदाहरण है। यहाँ मात्र कवि नहीं, एक वर्ग नहीं राष्ट्र, विश्व और एक युग बोलता है। न केवल फटे–चिरे हृदयों को, विसंगत विद्रूपताओं द्वारा ग्रस्त जीवन को, दल–दल के मध्य हरहराकर उठ खड़ी होने वाली तेजोदीप्त आस्था को, यहाँ कलात्मक स्तर पर कसावट मिली है वरन् अखबारी विषयों तक को कवि ने गहरे अनुभव के स्तर पर प्रस्तुत किया है ... लेकिन जो सबके ध्यान को खींचेगा, वह है आधुनिक जीवन बोध, उसकी छाती पर खड़ी दृढ़ तेजोदीप्त आस्था और प्रकृति का प्रशांत मंच।"*** [42]

वर्तमान जिन्दगी कवि को बर्फ जैसी ठण्डी लग रही है जिसके नीचे दबकर मनुष्य के गीत मौन हो गये हैं। कवि अनुभव करता है कि उसके गीतो को भी लू लग गई है और अब वह कभी गा न सकेगा, लेकिन कवि 'तरुण' अपनी तेजोदीप्त आस्था के बल पर गीतों को मौन न होने की बात भी कहता है–

"जब संसार व्यथाओं वाला–
हो जाये काजल–सा काला,
चन्द्रकिरण बन आलोकित कर देना शून्य हृदय का कोना!
मेरे गीत मौन मत होना।" [2]

अन्याय के विरुद्ध आवाज लगाता हुआ कवि प्रचण्ड क्रान्ति का आह्वान करता है, विद्रोह की प्रेरणा देता है तथा सघर्ष के लिए प्रोत्साहित करता है–

"उठने दो काली पीली आँधियाँ
गिरने दो गाज और ढहने दो शिखर।" [3]

अवसाद, निराशा, कुण्ठा और अकर्मण्यता के इस परिवेश में भी कवि एक ऐसी ज्वाला लिए हुए है जो राह के रोडे भस्म करके उसका पथ–निदर्शन करती है। मौत की छाती पर पॉव टेक कर उठ खडा होने वाला आत्मविश्वास कवि को विप्लव के लिए तैयार करता है–

"पथ सुझावे और राह के रोड़े करदे भस्म जो–
ऐसी एक अमर ज्वाला है, जो मेरे ही पास है।" [4]

पुरानी मान्यताओं से सडॉध आने लगती है। अत कवि का विचार है कि पुरानी मान्यताओं के पत्तो को झडने दो

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'है', पृष्ठ 31
2 वही, 'मेरे गीत मौन मत होना', पृष्ठ 27
3 वही, 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 27
4 वही, 'मुक्तक', पृष्ठ 91

तभी तो रक्ताभ पल्लवो का आगमन होगा—

"कुत्ते के कान—से हो गये हैं मुड़ कर—
पुरानी जर्जर मान्यताओं के खरखराते पत्ते!
झड़ने दो इन्हें—
फूटने दो नये रक्ताभ पल्लव!
पृथ्वी पर उतारो, रे—
अब नया मानव!" [1]

सांराश रूप में हम कह सकते हैं कि कवि 'तरुण' के काव्य में आधुनिक जीवन बोध समष्टि स्तर पर व्यक्त हुआ है।

'ऑधी और चॉदनी' में कवि का प्रकृति—प्रेम व्यंजनात्मक रूप में ही अधिक मिलता है। 'ॲधेरा' बडी सशक्त प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। ॲधेरा प्रतीक है कुछ जीवन स्थितियों का, कुछ विचारधाराओं का। उसमें कुछ सुन्दर प्रकल्पन भी है। विराट शक्ति, दमन चक्र, सर्वसत्ताधीशता, समाजवाद की भेदभाव रहित नीति आदि की 'ॲधेरे के माध्यम से सुन्दर व सफल अभिव्यक्ति हो पाई है। इस कविता मे प्रकृति का अलौकिक, आनन्दमयी व विश्रामदायक रूप सामने आया है। कवि ने ॲधेरे को सुभग, सुन्दर, प्रेरणादायक और चिरशान्तिप्रदायक तत्त्व के रूप में लिया है—

"— यह ॲंधेरा है सुचिक्कण स्निग्ध ढाका—सिल्क सा
जिस पर कि मेरी रूपवन्ती कामनाएँ काढ़ती हैं—
x x x x x x
यह ॲंधेरा है बड़ा विश्रामदायक,
ग्रीष्म की विश्रान्त संध्या में भरे जल हौज—सा
x x x x x x
इस तिमिर के गुदगुदे सुकुमार गद्दे पर—
अभी आ सो गये हैं.....
नींद में डूबे, बिना माँ के, थके बच्चों सरीखे, भूल अपनी पीर।" [2]

'कश्मीर की घाटी मे' कविता में कश्मीर का श्रीसौन्दर्य वर्णित है। प्रकृति के माध्यम से कवि का रोमांटिक दृष्टिकोण अत्यन्त मोहक रूप मे वर्णित हुआ है। प्रकृति के मानवीकरण के अनेक अनूठे चित्र तो अत्यन्त मोहक है—

"पहने नील जरी की जाली,
मृदु—सुकुमार पटलियों वाली,
रूप—उनींदी गिरिमालाऐं—
लेटी सम्मुख, दाएँ, बाएँ।" [3]

'कन्याकुमारी का समुद्र' में समुद्र के उछाल व ज्वार के माध्यम से युवा—उत्साह की भी उद्दीपनगत व्यंजना हो पाई है। कवि की रूपक—योजना यहाँ अनुप्रेक्षणीय है। सिन्धु कन्या मानो रेशमी लहंगा पहन इठलाती ठुमक कर नाच रही है—

"प्राण की सौ—सौ उछालों की पटलियों से तरंगित—
नील जरतारी पहन कर रेशमी लहँगा,

---

1 'ऑधी और चॉदनी' नव मानव', पृष्ठ 56
2 वही 'ॲधेरा', पृष्ठ 4—5
3 वही, 'कश्मीर की घाटी में', पृष्ठ 129

ठुमक कर नाचती यह

सिन्धु–कन्या इस विजन में!" [1]

'पहले इनकी सुन लो' कविता में कवि का पुष्पों के प्रति गहरा अनुराग झलकता है। फूल कवि को बहुत अधिक भाते हैं लेकिन कवि को खेद है कि वह अपनी व्यस्तता के कारण अधिक समय तक फूलो से प्यार नही कर पाता है। फूलों के मादक सौन्दर्य का कवि पर गहरा असर है–

"मेरे लॉन की क्यारियों में,

चहचहा, गहगहा, महमहा उठे हैं, मेरा पीछा करते।" [2]

'बादरे' कविता खभात की खाडी की ओर से उमडते–घुमड़ते आते बादलो को देखकर रची गई है। इस कविता मे लोकजीवन की सच्ची झॉकी अकित है। एक गोरटी नायिका की याद में बादल यहाँ सजे–धजे है। उसके केश बिखरे है, ऑखों मे अजन लगा हुआ है, और मस्त–माते नयन में सजल–याद घुमड रही है। मिलनातुर नायक की चाल भी तो देखिए–

"छमछमाते चरण में ठुमक मणिपुरी

लंक में हैं लचक, ओठ पर बाँसुरी,

झाँवरी–झाँवरी, दूबरी–दूबरी–

आ गये है धरा को लगाने गले।" [3]

'गेदा के फूल' को लेकर कवि ने दो कविताऍं लिखी है। इसमे कवि ने बाल मनोविज्ञान का अच्छा चित्रण किया है। यह शुद्ध प्रकृति काव्य है। कवि की इनसे शैशव की प्रीति है। चंदनिया धूप मे खिलते हुए हल्दिया, पीले, सिन्दूरी, जाफरानी और वसन्ती रंगों मे रस–भरे गेंदे कवि को कभी रसीली राल टपकाते सलोने, सरल शिशुओ–से और कभी कौतकी बालकों के समान तथा कभी सिरचढे हुए लाडले बच्चो की भॉति गर्वीले लगते हैं–

"इस चंदनिया धूप में

खिलते हुए नव

हल्दिया, पीले, सिन्दूरी, जाफ़रानी ओ वासन्ती रंग के

ये फूल गेंदे के–

सुकोमल प्राण मेरे बाँध लेते हैं।" [4]

'उस सुदूर दिन की नीली याद मे' काव्य मे प्रभात का सौन्दर्य वर्णित है। किसी सुदूर दिन की नीली याद में लुभावने और महकते हुए स्मृतियो के भावमय सौन्दर्य को अंकित किया है। इन स्मृति–चित्रों को प्रस्तुत करते करते कवि का पुनः इतना रोमांचित, विगलित और अभिभूत हो जाना कितना स्वाभाविक है कि वह केवल 'ओह– वह दिन।' कह कर निर्वाक हो जाए–

"वह रात

तीज–चौथ की क्वाँरी चाँदनी में महकती

मीनी–मिसकती

लजवंती जूही–सी निंदियारी थी।

वह सारा ही दिन तुम्हारे मोती–दाँत की रलक में

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'कन्याकुमारी का समुद्र', पृष्ठ 33

2 वही, 'पहले इनकी सुन लो', पृष्ठ 35

3 वही, 'बादरें', पृष्ठ 130

4 वही, 'गेदा के फूल', पृष्ठ 36

रलमलाता रहा था।
तुम्हारी वाणी की झनकार में
सब कुछ छहरा जा रहा था—
उस दिन!" [1]

'आज की यह रात' में रात का सौन्दर्य वर्णित है तो 'ओ निगोडे चॉद' मे अतीत की स्मृतियॉ व तज्जन्य टीस की अभिव्यक्ति अधिक है। 'बसन्ती धूप' और 'वसन्त' मे बसन्त–वैभव को निरूपित करने वाली कविताएँ है। 'जापान मे साकुरा' कविता में 'साकुरा' पुष्पो के प्रति प्रेम अभिव्यक्त हुआ है तो 'यह चॉद जिधर से आता है' में छायावादी प्रकृति चेतना निरूपित हुई है। 'आज जो चाहे कहो' में छायावादी रोमानियत मुखर हो उठी है।

डॉ0 देवीशकर द्विवेदी इन्हें प्रकृत कवि मानते हैं वे कहते है– ***"मुझे लगता है कि तरुण को प्रकृति का कवि कहने के बजाय प्रकृत कवि कहना अधिक उचित होगा। प्रकृत कवि से मेरा तात्पर्य सम्पूर्ण–सर्वांग कवि से है। प्रकृत कवि जो भी देखता है, जो भी सोचता है, जो भी अनुभव करता है एक कवि के रूप में। यह उसकी प्रकृति है, चाहे उसकी शक्ति कह लें, चाहे उसकी विवशता कह लें। .....प्रकृत कवि का कवि देशकाल की सीमा से नहीं बँधता, न विषयों के प्रकार से बँधता है। काव्य उनकी नियति होती है।....***

प्रकृति तरुण का नैसर्गिक विषय है। शायद ही कोई कविता सारे संकलन में मिले जिसमें किसी न किसी रूप में प्रकृति का समावेश न हुआ हो। समसामयिक जीवन के किन्हीं अरोचक पहलुओं को देख कर भी वे प्रकृति की ओर भागते हैं और प्रकृति के माध्यम से ही उन्हें अभिव्यक्त करते हैं।" [43]

'आज की यह रात', 'वसन्ती धूप', 'कहो', 'ओ निगोडे चॉद' कविताओं में प्राकृतिक दृश्यो के उल्लास मे पूँजीवादी विलास नही, उस पर तीखा कटाक्ष भी है। 'दलबदलु' और 'डेमाक्रेसी' कविताओ मे प्रकृति के सहज सलोने सौन्दर्य के अद्वितीय चित्रो के माध्यम से व्यग्य किया है।

'तरुण' मूलत प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य के कवि है। उनका अदम्य प्रकृति–प्रेम इन रचनाओं में प्रकट हो ही गया है। कुछ मे शुद्ध प्रकृति–निरूपण है तो कुछ मे प्रकृति के माध्यम से अन्य जीवनानूभूतियॉ अभिव्यक्त हैं। 'हिमालय के प्रथम दर्शन', 'कन्याकुमारी का समुद्र', 'वह हठीला बिम्ब', 'गेंदा के फूल', 'आज की यह रात', 'बसन्ती धूप', 'उस सुदूर दिन की नीली याद मे', 'पहले इनकी सुन लो', 'ओ निगौडे चॉद', 'कश्मीर की घाटी मे', 'यह चॉद जिधर से आता है', 'अँधेरा', 'बसन्त', 'चॉद से हौले–हौले चलो' आदि रचनाएँ संग्रह की प्रकृति–विषयक रचनाएँ हैं।

कवि की दृष्टि में प्रेम सृष्टि का मूल तत्त्व है। अर्थात् वह तो सृष्टि मे उपजा सबसे पहला रंग है। इसके संयोग से संसार का कण–कण कंचन की भॉति दमक उठता है। प्रेम के अभाव मे सृष्टि का प्रत्येक आयाम मरघट की भॉति लगता है। वस्तुतः प्रेम ही जीवन है–

"यह है देखो प्यार सुनहला;
रंग–सृष्टि में उपजा पहला!
जग कंचन–सा दमक उठेगा–लो कण–कण में घोल दिखाऊँ!" [2]

'फूल, खिले बेला के' शीर्षक गीत मे कवि की प्रणय भावना अत्यन्त मादकता के साथ अभिव्यक्त हुई है, किन्तु फिर

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'उस सुदूर दिन की नीली याद मे', पृष्ठ 43
2 वही, 'लो कवि का मन खोल दिखाऊँ', पृष्ठ 125

भी प्रेम के प्रति कवि की उदात्त और निर्मल दृष्टि को ऑच नही आई है। संयोग–अवस्था के इन मादक क्षणो में कवि और उसकी प्रेमिका के तन–मन सिरस–सुमन की भॉति हल्के हो गये है और पृथ्वी तो मानो उसके पॉवो को अब पथरीली ही लग रही है। दोनों गगन में उड़कर नशीली रात का भरपूर आनन्द लेना चाहते हैं। कवि अपनी प्रिया को तारो की करधनी बना कर पहना देने को उत्सुक हो उठा है–

"मन आज हमारे सिरस–सुमन–से हल्के,
चन्दा पर ज्यों टुकड़े–बरसे–बादल के!
है धरा आज इन पाँवों को पथरीली–
लो उड़ें गगन में, काटें रात नशीली!
मैं बना करधनी तारों की पहनाऊँ–
तुम पौढ़ चाँद पर, शिथिल–वसन अलसाओ!
सखि, फूल खिले बेला के, तुम मुसकाओ।" [1]

'तरुण' के काव्य में कदाचित् ऐसे ही मादकतापूर्ण और रोमांचकारी काव्य के चित्रों से अभिभूत होकर विख्यात साहित्यकार डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक ने लिखा है– ***"प्रेम और रोमांस के चित्र अंकित करने में तो कवि को ('तरुण' को) निर्सग से वरदान ही मिला है।"*** [4]

'सुकुमारि, उठाओ अवगुण्ठन' शीर्षक गीत में कवि अपनी प्रेयसी की नव–इन्दु–कला जैसी सुरभियुक्त मृदु–मुस्कान भरी वाणी से न जाने कितने मरुस्थलों को मधुबन होते देखता हैं। उसकी वेणी में यम–बन्धन तथा जूडे में राका–शशि–श्रेणी और अवगुण्ठन के पीछे से फूटी आती हुइ रूप–सुधा उसे साफ दिखाई पडती है–

"नव इन्दु–कला–सी, सुरभि–सनी
मुसकान दिखाओ मृदु अपनी!
मधुहासिनि, देखूँ–वाणी से कितने मरु होते हैं मधु–वन!
सुकमारि, उठाओ अवगुंठन!" [2]

'हम तुम कहीं चल दें' शीर्षक गीत में कवि इस मरण की भूमि को छोडकर अपनी प्रिया को साथ लेकर, सीमित क्षितिज को पार करके दूध जैसी चॉदनी में एक नन्ही नाव पर, वहॉ जाने का आकांक्षी है जहॉ की निशाएँ अंगूरी है और मुसकान में ही जहॉ मधुमास उतर आता हो–

"नाव बढ़ती हो थिरकती, हँस रहे हों चाँद–तारे,
जल–लहरियों पर जड़े हों, मोतिया सलमे–सितारे,
यह मरण की भूमि तज, सीमित क्षितिज को पार कर–
हम–तुम, कहीं चल दें!" [3]

कवि विरह की अग्नि मे भी खूब तपा है, जला है। अपनी प्रीत को याद करके उसका हृदय तडप उठता है। सयोग के पश्चात् प्रणय की अवस्था में उसका साथी बिछुड जाने पर उसे लगता है कि उस प्रीत को याद करते ही हृदय के गुलाबी दर्द भरे घाव खुल जायेगे और उसका सारा पानी–आत्म–द्रव–बह जायेगा। अब तो वे स्वर्ण–से दिन स्वप्न बनकर और वे रजत–स्वप्न की रातें

---

1 'ऑधी और चॉदनी' 'फूल खिले बेला के', पृष्ठ 105
2 वही, सुकुमारि, उठाओ अवगुण्ठन, पृष्ठ 115
3 वही, 'हम तुम कही चल दें', पृष्ठ 103

मात्र कहानी होकर ही रह गई है–

"मन, वे दिन सोने–से अपने–
आज हुए नीलम के सपने!
भूलो रजत–स्वप्न की रातें; वे बातें हो गई कहानी!
याद न कर मन, प्रीत पुरानी!" [1]

वंसरी की मधुर स्वर–लहरी तो सीधी कवि के हृदय में आकर उसे बेंध जाती है। बरसात की रात में बसरी का स्वर उसकी व्यथा को फिर से हरी कर देता है। उसे अपने पुराने प्यार की याद आ जाती है। उसका मन गीली रुई की भाँति जलने लगता है। ऊपर से रात की रानी की सुगन्ध तो मानो उसके प्राण ही लेकर रहेगी–

"यह रागिनी युग–युग चले,
गीली रुई–सा मन जले!
रे, प्राण ले कर ही रहेगी, रात की रानी, मरी!
किसने बजाई बंसरी!" [2]

कवि को खेद है कि चूडी का टूटना, आकाश में तारे का टूटना, मेघ में बिजली कडकना, शृंगारिणी के हाथ से शीशा टूटना आदि तो अपशकुन समझे जाते हैं, किन्तु जब कोई हृदय टूटता है, तो उसका स्फोट कोई नहीं सुनता। उसकी व्यथा तो एक विरही ही जान सकता है। विरह की यह घनीभूत पीडा कवि की 'हृदय का मूल्य' शीर्षक गीत में व्यंजित हुई है–

"एक चूड़ी टूटती–तो हाय, हो जाता अमंगल!
मेघ में बिजली कड़कती–काँपता सम्पूर्ण जंगल!
भाग्य के लेखे लगाते–एक तारा टूटता तो!
अपशकुन–शृंगारिणी के हाथ शीशा छूटता तो!
दीप की चिमनी चटकती–चट तिमिर का भय सताता!
कौन सुनता स्फोट? पर, कोई हृदय यदि टूट जाता!" [3]

'चॉदनी' पक्ष में कवि का अनुभूति पक्ष बहुत कुछ वैयक्तिक होते हुए भी संश्लिष्ट है। कवि की प्रातिभ शक्ति के कारण उसकी अनुभूति और अधिक प्रभावशाली हो गई है जहॉ ऑधी की जमीन ऊबड–खाबड है और ऑधी प्रतीक के अनुरूप है, वहॉ 'चॉदनी' की जमीन सुवासित व समतल है। 'चॉदनी' में सग्रहीत अधिकाश गीतों में एक प्रकार की मृदुता और तरलता है। यह कवि की अदभुत सफलता है। 'मुझको एकाकी गाने दो', 'गीत–प्रदीप जलाए', 'दूर–काले बादलो में', 'तुमने अभी न देखा जीवन','तूफानी जीवन–सागर में,' 'चॉद से हौले–हौले चलो' आदि अनेको गीत बडे ही मार्मिक है।

'गा, मेरे कवि' में कवि इस जग के कण–कण को ज्योतिर्मान तथा अणु–अणु को मधुमय हो जाने की आकांक्षा करता है–

"जग का कण–कण हो ज्योतिर्मय,
हो प्रकाश में अन्धकार लय,
यह जगती होवे मंगलमय,

---

1 ऑधी ओर चॉदनी' 'याद न कर मन, प्रीत पुरानी', पृष्ठ 119
2 वही किसने बजाई बसरी', पृष्ठ 107
3 वही हृदय का मूल्य', पृष्ठ 133

अणु–अणु की गति होवे मधुमय,

विचरें निर्भय–जग–आँगन में जुगनू, ग्रह–नक्षत्र, दीप, रवि!" [1]

कवि के विश्व–प्रेम की भावना का सकेत उसके काव्य ग्रन्थ– 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' की भूमिका किए गये उद्‌गारों में भी मिलता है। अपनी सृजन–प्रक्रिया पर आत्मघोष करते हुए तरुण लिखते हैं– ***("कविता से मैंने) विराट् प्रकृति, जीवन, व्यक्ति–मन तथा व्यापक जन–समाज के साथ अपनी सीमा में आत्मविस्तार के अनुभव–संग्रह का अभ्यास भी किया है।"*** [45]

अणुबम से जलने को तैयार बैठे ससार को कवि पुकार–पुकार कर कह रहा है कि इसका शीतल उपचार करो, अन्यथा मानव–जाति का अस्तित्व भी भूमि पर नही रहेगा–

"प्यार करो!
अणुबम से जलता जग, शीतल उपचार करो!
प्यार करो!" [2]

'आकाश का निमन्त्रण' गीत मे कवि मनुष्य को उद्‌बोधित करते हुए कहता है कि उसे मनुष्य होकर घुटा–घुटा अथवा गला–गला जीवन नही जीना चाहिये। अपितु अपनी असहाय और दीन अवस्था को अपनी नियति न मानकर प्रकृति के विभिन्न उपादानो से जीवन–विकास की प्रेरणा लेकर असीम मुक्ति के बीच लहलहाते हुए जीवन का आनन्द लेने में ही मानव–जीवन की सार्थकता है–

"जहाँ मनुष्य गीत–हीन जी रहे,
विनीत–भाल कालकूट पी रहे,
कराह से हताश ! घाव सी रहे,
न शब्द है कि पीर प्राण की कहे!
निचोड़ आज सत्त्व आसमान का
रस–प्रवाह आज जा बहा वहाँ!" [3]

मानव की समानता, स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्रिक जीवन–मूल्यों, उन्मुक्तता, गायन–वादन, संगीत तथा परस्पर सद्‌भाव आदि सूक्ष्म मूल्यो, वृत्तियों तथा कलाओ के प्रति कवि का गहरा अनुराग उसकी 'युग आयेगें' शीर्षक गीत में स्पष्ट दृष्टिगोचार होता है–

"सब तोड़ लकीरें भौगोलिक–
मानव, निज ज्योति लिये मौलिक–
स्वच्छन्द सितारों–से झलमल, सह–गान धरा पर गायेंगे!" [4]

कवि को 'वासन्ती धूप' एक आधुनिका की भाँति नाक में लौंग और काचनारी साडी पहने पान खाती हुई अलक बिखराए लॉन पर अकेली बैठी गुनगुनाती, नील स्वेटर बुनने और बिनाका गीतमाला सुनने में तल्लीन दृष्टिगोचर हो रही है–

"लॉन पर बैठी अकेली,
गुनगुनाती, नील स्वेटर बुन रही है,
औ' 'बिनाका गीतमाला' सुन रही है,

---

1 'आँधी और चाँदनी', 'गा, मेरे कवि', पृष्ठ 62
2 वही, 'प्यार करो', पृष्ठ 70
3 वही, 'आकाश का निमन्त्रण', पृष्ठ 79
4 वही, 'युग आयेंगे', पृष्ठ 72

मृदुल पलकों में क्षितिज के पार के सपने सँजो–
कुछ गुन रही है!" [1]

'हम जीते तो है' शीर्षक रचना मे कवि आधुनिक युग मे मानव की विवशता, कुण्ठा और सत्रास को एक मार्मिक बिम्ब से व्यक्त करते है। कवि कहता है कि हमारा अस्तित्व उस विवश और असहाय चिडिया की 'नन्हीं–गोल स्तब्ध भीत, काठ मारी ऑख–सा है, जो कि रेगिस्तानी आषाढ–सांझ में, काली–पीली ऑधियों में बिजली की चमक से डरकर अपने डेनों में छिपना चाहती है–

"किसी चिड़िया की
नन्ही–गोल,
स्तब्ध–भीत,
काठ–मारी
आँख–सा ही–
हमारा अस्तित्व भले ही हो,
पर, हम जीते तो हैं!" [2]

'कैमरा' यान्त्रिक बिम्बों की आधुनिक भाव–बोध की सशक्त कविता है। कवि मानव–मन को भी कैमरा बताता है। यह मानव–मन का कैमरा आटोमेटिक है, प्रत्येक क्षण 'क्लिक' करता रहता है। बहुत से चेहरों के सर्प्राइज स्नेप्स यह कैमरा लेता रहता है। मानव–मन के कैमरे की विशेषता यह हे कि जब यह चित्र लेता है तो मुखौटों के भीतर का असल चेहरा भी पकड लेता है और गिरगिटिया ऑखो के शेड्स गी इससे छुप नही पाते।

"सप्राईज स्नैप्स जाने कितने चेहरों,
मुखौटों के ले लिये गए हैं इससे।
गिरगिटिया आँखों के शेड्स को कैच करने में
यह बड़ा फुर्तीला है–
साँप की ओर लपकते नेवले–सा।" [3]

कवि ने राजनीति पर करारा व्यग्य करते हुए 'दलबदलू' शीर्षक रचना में प्राकृतिक उपमान का सहारा लेकर भावों को अत्यन्त प्राजलता के साथ अभिव्यक्त किया है–

"ताड़, खजूर, पौधे, तृण–
चले जा रहे हैं धरती से आकाश की ओर,
किरणें, वर्षा की बूँदें–
चली आ रही हैं आकाश से धरती की ओर;
सृष्टि में कब न रहे–
दलबदलू!" [4]

'सॉप: आवास समस्या' में कवि 'तरुण' शोषकों को सॉप के नाम से सम्बोधित करते हैं। केवल 'सॉप' ही नहीं, 'आस्तीन के सॉप' कहा है, जो कि अपने 'सुरक्षित और समशीतोष्ण डी–लक्स' आवासों में रहते हैं, जो सुख–सुविधाओं से भरपूर है। कवि

---

1 वही, 'बसन्ती धूप', पृष्ठ 41
2 'ऑधी और चॉदनी' 'हम जीते तो हैं', पृष्ठ 7
3 वही, 'कैमरा', पृष्ठ 16
4 वही, 'दलबदलू', पृष्ठ 19

सॉपो का फन कुचलने के लिए तैयार है और तभी वह शोषको के असली चेहरे को एक्सपोज करता है–

"लावारिसों की तरह, आदिवासियों की तरह–
सदियों तक, सहस्राब्दियों तक,
बचते–लुकते, रेंगते, भटकते,
कुंडली–मारते, फुँफकारते,
अब जा कर पाया है उन्होंने आवास एक–डीलक्स,
सुरक्षित और समशीतोष्ण,
सुविधाएँ जहाँ सारी–आस्तीन!" [1]

'बैठूँ मैं– किस मुद्रा में?' कविता में 'तरुण' समाज में व्याप्त अत्याचार अन्याय, निराशा, गहरी घुटन और शोषण से दु:खी है। कवि अपनी विषम स्थिति को उजागर करता है कि उसे अब समाज में व्याप्त कडवे ज़हर को पीना ही पड रहा है। अब वह करे तो क्या?–

"कहाँ?
किस तरह?
किस वन में?
कहाँ जाकर?
किस मुद्रा में बैठूँ?" [2]

'बुझूँगा, मैं अंगार' कविता में कवि का मृत्यु–बोध बहुत ही स्पष्ट किन्तु कलात्मक दृष्टि से प्रकट हुआ है किसी कमनीया की सुन्दर कलाइयों में चिमटे के बीच पकड़े जाते कोयले की तरह वह भी किसी दिन मरण अन्धकार में छनन. न्न.....न्न आवाज के साथ बुझ जायेगा। मृत्यु–बोध की यह कविता विषय से अधिक तो अपने शिल्प के कारण प्रभावशाली बन गई है। मृत्यु के हाथो गृहीत उपमान बड़े ही सौन्दर्यमंडित, सटीक और कलात्मक है, काव्यात्मक भी–

"रूप के न जाने कौन से अनचीन्हे
सहज–हँसते, लोने, दिशाहीन हाथ–
मुझ लहकते तरुण अंगार को
एक दिन मरण–अंधार में
डुबो जायेंगे–" [3]

जवाहर की मृत्यु पर लिखी गई कविता 'आज मिली माटी से माटी' भी एक सुन्दर कविता है। श्रद्धांजलि या करुण–प्रशस्ति (ऐलेजी) होते हुए भी उसकी काव्यीय ऊर्जा या तेजस्विता मोहक है जो कवि की प्रतिभा का परिचायक है। यहॉ मृत्युबोध से अधिक मृत्यु की गरिमा का महिमा गान है।

मृत्यु–बोध से ही जुडा हुआ है ससार की क्षणिकता या क्षणभंगुरता का बोध। कैसी विवशता है यह! माटी की ढेरी काया से ही स्वप्न, अभिलाषाएँ, स्वर और सुधियो का आभोग करना है। विवशता एव पीडा की अनुभूति व उसकी अभिव्यक्ति ध्यातव्य है–

"सपने मेरे–स्वर्ण–बदलियाँ,

1 'ऑधी और चॉदनी' 'सॉप आवास समस्या', पृष्ठ 18
2 वही, 'बैठूँ मैं–किस मुद्रा मे?', पृष्ठ 23
3 वही, 'बुझूँगा, मैं अगार', पृष्ठ 48

अभिलाषाएँ–रूप–तितलियाँ;
स्वर–शशि–किरण–विचुम्बित निर्झर,
सुधियाँ! सोनजुही–सी मेरी–
पर, काया–माटी की ढेरी!" [1]

"ऑधी और चॉदनी" 'तरुण' के भोगे हुए जीवन के खट्टे–मीठे अनुभवों का निचोड़ है। यह कवि के अनुभवो की जीती–जागती और ईमानदार अभिव्यक्ति है। इसमें जीवन का विष भी है और अमृत भी, चॉदनी की शीतलता भी है और ऑधी का विनाश और वेग भी। कवि के अपने जीवन के अनेक निजी सन्दर्भ भी यहॉ उसकी भावनामयता के साथ गुँथकर सामने आये हैं। यह कवि का भोगा हुआ जीवन है। जीवन की चॉदनी न उसे आत्ममुग्ध कर सकी है, और न जीवन की ऑधी उसे विचलित। उसने दोनो बांहे फैलाकर इस ऑधी और चॉदनी– दोनों का स्वागत किया है। व्यंग्य कविताऍ इस संकलन की विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती हैं– जबकि प्रकृति–कविताओ की भी वैसी ही सार्थक राशि यहॉ भी है, जैसी कवि के पूर्ववर्ती काव्य–संकलनों मे थी। चूँकि यह कवि के प्रौढ़ जीवन के अनुभवों की कृति है अतएव यहॉ पर एक तारल्य गंभीरता है– गंभीरता अनुभवों की भी और अभिव्यक्ति की भी। कवि का रचना–शिल्प भी यहॉ अधिक परिष्कृत तथा प्रौढ है। 'ऑधी और चॉदनी' 'तरुण' के रचनाकार की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि हैं।

---

1 वही, 'मुक्तक', पृष्ठ 89

अग्नि–संगीत

'अग्नि–सगीत' सन् 1981 मे सम्पादित काव्य सग्रह कविवर 'तरुण' की प्राण ज्योतिमय–ओजस्वी स्वर की 'प्रकाशित तथा अप्रकाशित कविताओ मे से कतिपय अत्यन्त मार्मिक व प्रभावशाली कविताओं का सकलन' हैं। डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत ने इसे सपादित किया है, का कथन है– ***"'अग्नि–संगीत' की प्राण–ज्योतिमय काव्य–धारा हर युवक–युवती/तरुण–तरुणी के लिए नहीं, अपितु आबाल–वृद्ध सबके लिए जीवनोष्मा का आकाश–दीप सिद्ध होगी। 'अग्नि–संगीत' में आलोक, दीप्ति, कांति, तेज, ऊष्मा और मीठी सुलगन आदि जीवन के सब सुरों का मीठा, गम्भीर और समन्वित संगीत पायेंगें आप, और अपने भीतर सुनेगें भी।"*** [46]

जीवन की प्रज्ज्वलित अग्नि से पुरुष प्रेरणाएँ पाता है। कवि अपने काव्य में, जीवन को 'जीवन' बनाने के लिए, निराशाओं को परास्त करने के लिए जीवन की इस आग को प्रज्ज्वलित करते रहते हैं। यौवन का दूसरा नाम ही जवानी है। यह जवानी कोई सामान्य तत्त्व नही होती है बल्कि असाधारण होती है। धधकती अग्निशिलाएँ उसका रास्ता बनाती है। यह जवानी न तो कोई बन्धन मानती है और न कोई विश्राम चाहती है। वह तो निरन्तर आगे बढना जानती है–

"न बन्धन मानता हूँ मैं,
न रुकना जानता हूँ मैं,
कि सीमा तोड़ पिंजर की, करूँगा व्योम की फेरी!
जवानी आ गई मेरी!" [1]

यौवन की इस शक्ति को न सुविधाओ की अपेक्षा होती है न साधनो की। 'फटे–पॉव' उसकी शक्ति होते है तो कंधे पर पडी पुरानी कथा उसका अटूट सबल। इस जवानी का वैभव अनन्त है, उफान अपार है वह बेडौल चट्टानों से टकराने की क्षमता रखती है–

"उमंगें ले हृदय में सौ–
चलीं लहरें किनारे को,
मिटीं चट्टान से टकरा–
न था कुछ भी सहारे को!
कहाँ बेडौल चट्टानें! कहाँ सुकुमार पानी है!
जवानी है, जवानी है!" [2]

जवानी की एकमात्र सार्थकता उसका निरन्तर आगे बढ़ते रहना ही है, जीवन और मृत्यु तो उसके यात्रा–पथ के अभिन्न साथी है जो जीवन की धार को अनन्त काल तक अनवरत बनाए रखते हैं–

"मिट जाना ही तो जीवन है,
मरण, सृष्टि का प्रथम चरण है,
अरे अमर, तू मर न सकेगा बीज रूप बन धरती में गल।" [3]

जब आदमी के चरण जीवन पथ पर रुकने–थकने लगते है, उसकी सॉसो बोझिल होने लगती है तब कवि 'तरुण'

---

1 'अग्नि–सगीत' 'जवानी आ गई मेरी', पृष्ठ 24
2 वही, 'जवानी है, जवानी है', पृष्ठ 82.
3 वही, 'तू अपने पथ–पर बढता चल', पृष्ठ 26

का कवि ऐसी अवस्थाओ के लिए प्रेरणा और शक्ति का सदेश लेकर सामने आ कर राही का उत्साह बढ़ाता है–

"झेलते आँधी, वर्षा, घाम–
निरन्तर बढ़ना तेरा काम!
मिले या मिले नहीं विश्राम, पेड़ की शीतल छाँह–तले!
बटोही, ठंडी साँस न ले!" [1]

कवि जीवन–नैया के माझी को यह प्रेरणा देता है और चेतावनी भी कि अन्तिम समय तक मृत्यु का आलिंगन करके भी तुझे आगे बढना है। इस यात्रा में हिम्मत हारने वाला समुद्री जीवों के पेट में चला जाता है, जबकि साहसी नाविक अपनी मंजिल पाता है–

"झंझा आवे, नौका डोले!
लहरें तेरे बल को तौले!
मृत्यु तुझे आलिंगन में ले, पर प्यारे, मुख मोड़ न लेना!
माँझी, साहस छोड़ न देना!" [2]

ससार को 'यो ही' मानकर चलने वाले जीवन के सत्य को पहचान नही पाते। जीवन तो निरन्तर 'संघर्ष प्रगति, विश्राम, मरण' की एक शृंखला है, उसमें कोरी भावुकता के लिए कोई स्थान नहीं है–

"जीवन तो है यह, भीषण रण;
संघर्ष, प्रगति; विश्राम, मरण!
लेकर के नित जीते रहना कोरी भावुकता रग–रग में–
यों, काम नहीं चलता जग में!" [3]

'निर्झर' कवि की ऐसी सशक्त रचना है– जिसमें वे जीवन की चेतना के स्रोत की तलाश करते हैं, जो अपनी शीतल आग लेकर पर्वत का श्रृगार है, तथा निरन्तर गीत गाता हुआ अपने बीहड पथ पर गतिशील है–

"जीवन मेरा तप्त लौह की तरल–तरंगित धार–सा,
मस्ती से बहने दो मुझको पर्वत के श्रृंगार–सा!
मत समझो मुझमें बस केवल लहरें, बुद्‌बुद, झाग है–
देख सको तो देखो, कितनी अरुण–बैंगनी आग है!" [4]

निर्माण कभी–कभी ध्वंस की अनिवार्य भूमिका के पैरों पर चलकर आता है। तेजस्वी व्यक्ति निर्माण के लिए उस ध्वंस को भी आगे बढकर अँकवार देता है। कभी उसे धरती–से आदेश मिलता है, तो कभी आकाश निमन्त्रण देता है–

"निहार, मेघ–बीच दृप्त चंचला,
मरोड़, तोड़, फेंक, लौह–शृंखला" [5]

'अपराजेय' व्यक्तित्व के धनी 'तरुण' की शिराओं में वह जन्मजात रक्त की रवानगी है, यह उसकी प्रकृति, उसका स्वभाव है, उसकी आस्था है, जो उसे क्रांति के लिए तडप से भरती है, संघर्ष के लिए तत्पर बनाए रखती है। इसी प्रकृत स्वभाव के बल

---

1 'अग्नि–सगीत' 'बटोही, ठण्डी सॉस न ले', पृष्ठ 19
2 वही, 'मॉझी, साहस छोड न देना!', पृष्ठ 21
3 वही, 'यो, काम नही चलता जग मे!', पृष्ठ 36
4 वही, 'निर्झर', पृष्ठ 40
5 वही, 'आकाश का निमन्त्रण', पृष्ठ 51

पर वह चिर–तरुण है, और दृप्तता के साथ कहता है–

"मैं!– और मानूँ, हार?
जन्म से जो ऊधमी हो–
मौत के जबड़े पकड़ कर,
खींच उसके दाँत सारे,
जिन्दगी का अर्क पीने को खड़ा तैयार!" [1]

कवि ने घुटन, आतंक और उत्पीडन की अनुभूतियो से अभिभूत होकर भी जीवन के मूलभूत सांस्कृतिक मूल्यों में अपनी अदम्य आस्था को बचाकर रखा है तभी तो वह विश्वास के स्वरो में यह कह सका है–

"धूआँ, धूल, धुंध, अँधियारा–
इनका चारों ओर पसारा!
किन्तु, इसी में चमक रहा है–
मेरी आशा का ध्रुव–तारा!" [2]

जवानी जीवन का वसन्त है तो जवानी जीवन की अटूट शक्ति भी। जब जवानी आती है तो शक्ति का अजस्र व अनन्त स्रोत मनुष्य की नसों में हिलोरे लेने लगता है। 'अग्नि–संगीत' में संकलित अखण्ड उल्लास से भरी रचनाएँ मनुष्य के रोम–रोम को ज्वलन्त तेज से सम्पन्न कर देती है।

---

1 'अग्नि–सगीत' 'मुक्तक', पृष्ठ 11
2 वही 'मुक्तक', पृष्ठ 11

हम शिल्पी संत्रास के

डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' का चौथा सशक्त कविता–संग्रह सन् 1984 में प्रकाशित 'हम शिल्पी संत्रास के' हैं। इस कविता–संग्रह मे 61 रचनाएँ संकलित है। 'अपने नयन–तारे प्राण प्यारे', जीवनाधार, एक मात्र पुत्र 'अमित' की स्मृति में लिखा गया (को समर्पित) यह 'काव्य–संग्रह' आधुनिक जीवन मे परिव्याप्त संत्रास का सच्चा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत काव्य–सग्रह में कवि ने जहॉ एक ओर तो भौतिकता के आडम्बरों, राजनीति, भ्रष्टाचार, सास्कृतिक पतन, शोषकों पर करारा व्यग्य किया है वही दूसरी ओर अपने प्राण–प्यारे पुत्र अमित की याद मे पीडामय हृदयोद्गार व्यक्त किए है। जहॉ एक और पूजीपतियो के विरुद्ध लावा उगला गया है, वही दूसरी ओर 'फटीचर नियति' का ताण्डव नृत्य प्रस्तुत किया गया है। 'अमित–स्मृति–कुज' की कविताएँ नियति के जहरीले अट्टहास के साथ कवि के वैयक्तिक जीवन पर मार्मिक प्रकाश डालती है।

'हम शिल्पी सत्रास के' शीर्षक से ही यही ज्ञात होता है कि कवि ने इस काव्य–सग्रह में आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं, अत्याचारो, आडम्बरो और यातनाओ आदि के भय से सत्रस्त मानव का यथार्थ चित्रण किया है। कवि ने स्वयं यह कह दिया है कि वह तो संत्रास का शिल्पी है। यह कैसी विडम्बना है कि व्यक्ति अपने ही विनाश के बीज बोता हुआ सभ्य प्राणी होने का दम्भ करता है–

"मरणधर्मा, क्रूरकर्मा, चार फुटे–
हर क्षण–
अपने ही विनाश की कला में जुटे–
जेब में पलीता लिये, और–
सिर पर गट्ठर ले, सूखी घास के!
आखिर हम आदमी ही तो हैं–
हाड़–माँस के!" [1]

जीवन मे व्याप्त संत्रास कवि के मन में क्रान्ति का बिगुल बजाता दृष्टिगोचर होता हैं। 'संत्रास' वास्तव में मानव–जीवन की पीडा से विभिन्न स्वरों पर साक्षात्कार कराता प्रतीत होता है। 'संत्रास' को स्पष्ट करते हुए डॉ0 ओमानन्द सारस्वत ने लिखा है.... ***"संत्रास' एक भुक्ति है, जो व्यष्टिस्तर पर कविता के विविध आयामों को सर्जनात्मक संचरण देती हैं और समष्टि स्तर पर यह व्यापक जीवन विद्रूपताओं से प्रेरित क्रान्ति को जन्म देती है। कविवर 'तरुण' ने इसे व्यष्टि स्तर पर पहले भली–भाँति भोगा है, चेतना में गहरे रचाया पचाया है, और तब जाकर उसे अनुभूति प्रक्रिया में ढालकर सूक्ष्म सुदृढ़ कला रेखाओं में रूपायित किया है।"*** [47]

'प्रथम किरण' मे कवि ने यथार्थ के जिस बीज को रोपा था उसका अंकुर 'हिमांचला' में प्रस्फुटित हुआ। 'ऑधी और चॉदनी' में इसने वृक्ष का रूप धारण किया। वह वृक्ष फला–फूला 'हम शिल्पी संत्रास के' कविता–संग्रह मे। इसमे यथार्थ मूर्तिमान हो उठा है अपने सही आकार–प्रकार में। यहॉ यथार्थ कवि के अन्य कविता–संग्रहो की अपेक्षा अधिक गहरा है। इस संग्रह की 'मानव–ज्वर', 'हम शिल्पी संत्रास के', 'खूनी पुल से होकर', 'दिव्याभास : एक आत्मानुभूति', 'कुम्भकार', 'सांस्कृतिक योगदान', 'कोकीन का इंजेक्शन', 'गिरवी', 'चोचो का खेल', 'रेल की खिडकी से', 'देश–सेवक', 'लो पकडो लंगोटा', 'कुर्सी', 'धन्ना सेठ', 'मानव–संस्कृति. मेडिकल चैकअप', 'मखमली

---

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'हम शिल्पी सत्रास के', पृष्ठ 18

थैला', 'धत्तेरे की', 'नरम रोटी–चिकनी', 'मेरी चेतना ठगी गई', 'आदमी का रक्त', 'एडमिनिस्ट्रेशन', 'आओ, चाय पीयें', 'धोखा हुआ' और 'अब जा कर' आदि अनेक कविताएँ यथार्थ को उजागर करती है। इनका सरोकार आधुनिक भाव–बोध, बदलते–मानव–मूल्य और सांस्कृतिक विकृतियों से हैं।

युग के संत्रास को झेलता कवि समग्र समाज का प्रतिनिधित्व करता है। ये कविताएँ आधुनिक युग की वाणी हैं। इन कविताओं मे युगानुभूति है, अपने समय की धड़कन हैं, अपने युग का यथार्थ हैं। हॉ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि कवि किसी खेमें में आबद्ध नहीं है। उसने अपनी कविताओ को नारा नही बनने दिया है। संग्रह के 'पहले थोड़ा सा यह' भाग में स्वयं कवि ने स्वीकार किया है– ***"जहाँ जीवन के महान आदर्शों के मूल्यों में से अनुप्राणित हुआ हूँ वहाँ जीवन के यथार्थ ने भी मुझे कम आकर्षित नहीं किया है। यथार्थ और आदर्श–दोनों ही भूमियों पर मेरी चेतना ने बिना कोई बैज या बिल्ला लगायें स्वच्छन्द विचरण किया है।... अपनी रचना में मैं किसी वाद, सिद्धान्त, धारा, सम्प्रदाय या गुट–शिविर आदि से कभी भी सजग भाव से नहीं जुड़ा हूँ – अच्छा या बुरा, जैसा भी रहा हो।"*** [48]

कवि स्वच्छन्दतावादी होते हुए भी यथार्थवादी है। किसी खेमें से नही जुड़ा, फिर भी प्रगतिवादी है। अपनी कविताओं में किसी प्रकार के नारे नही लगाए फिर भी वह समाजवादी है। वह शोषण का विरोध करता है। गन्दी राजनीति की परतें उधेडता है, समाज को आईना दिखाता है। यह सब कवि की अपनी विशेषताएँ हैं जिनका मूल्यांकन उसके सग्रहो से किया जा सकता है। वह अपने चारों ओर फैले यथार्थ को शब्दों में समेट लेने का आकांक्षी है। यथार्थ की एक झलक देखिए–

"कैंचियों, जंजीरों व छुरे–चाकुओं से बने
एक झूलते विशाल तंग पुल पर से
चले जा रहे हैं हम सब लोग।

×   ×   ×   ×   ×

पहाडियाँ, जंगल और अँधेरा!
और भीतर है बस ज्वलन्त जिजीविषा! जिजीविषा!!
प्यास है – पानी कहाँ
अँधेरा – साँय साँय,
दिशाएँ– भायँ भायँ!
और नीचे हमारे बही जा रही है–
मौत की एक ठण्डी काली नदी!" [1]

'मानव–सस्कृति मेडिकल चैकअप' शीर्षक कविता मे कवि स्पष्ट कहता है कि धरती की बेटी सस्कृति का रूप, आकार–प्रकार मनोहर है, किन्तु वह रास्ता भूली–सी खोई–खाई–सी रहती है। जैसे उसे कोई भीतरी घुन खाए जा रहा है और यह पीलिया, सूखा, मिरगी, टी0 बी0 या कैंसर जैसे किसी रोग से ग्रस्त है। आवश्यकता है शीघ्र ही इसके मैडिकल चैकअप की–

"जाने क्या खाए जा रहा है इसे–
कोई भीतरी घुन!
पीलिया, सूखा, मिरगी, टी0बी0 या कैंसर–
है क्या बेचारी अपने किसी रोग से बेखबर!
आँखें सूनी–सूनी!

---

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'खूनी पुल पर से होकर', पृष्ठ 21

अरे, रोग है इसे तो कोई अन्दरूनी!
जल्दी चैक कराओ!" [1]

धरती की वेटी संस्कृति के शरीर में उत्पन्न हो रही बीमारियों के चैक अप का संदेश देने वाला कवि जब अपने चारो ओर देखता है तो उसे स्फटिक–सी पारदर्शी काया वाला, मोतियों–सी बोली बोलता हुआ, मणियो से लदा, सृष्टि का शृंगार मानव कहीं भी दिखलाई नही पडता। वरन् उसे चारो तरफ भूखे–नगे, पिटते व आर्तवाणी करते स्त्री–पुरुष ही नजर आते है–

"पर मिले मुझे तो यहाँ देखने को–
आँधियों में उड़ते प्याज के छिलके–से निरीह प्राणी।
बन्दूक की बैटन से पिटते–नंगे स्त्री–पुरुष, करते आर्तवाणी,
खाकी वर्दियाँ, बमवर्षक जहाज,
पल्टनें, आक्रमण और युद्ध के साज़!
सृष्टि मिली– सूअरों का बाड़ा,
आदमी– खून की पौ में तैरता पड़ा पाड़ा!" [2]

'हम शिल्पी संत्रास के' संकलन की कविताएँ समकालीन जीवन की उकताहट, बेचैनी, युग–बोध और युग–चेतना की सशक्त दस्तावेज हैं जिनमे कवि का स्वर अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं से एक दम भिन्न है। संकलन की पहली ही कविता ध्यातव्य है–

"अब मलेरिया के मच्छर
आदमीदानियाँ तानकर सोया करेंगे
इस चिन्ता से–
कि कहीं हमें
विषय–संक्रामक मानव–ज्वर न हो जाय।" [3]

'सकीना का लोटा' शीर्षक कविता हर आदमी की वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्र है। सकीना के द्वारा सडक पर फेके गये टीन के रिजेक्टेड और कडम लोटे को स्कूल आते जाते छात्र फुटबाल बनाकर उस पर किक मारते थे। उस लोटे की स्थिति हमारे जैसी है–

"न जाने किधर गया बेचारा
वह लोटा
अपनी सुकृति, आकृति, विकृति, नियति लिए–
हमारी ही तरह–
हम जैसा ही।" [4]

देश के सास्कृतिक विनाश और असभ्यता के बढते हुए व्यापार को देखकर कवि चिंतित है। उसे अनुभव हो रहा है कि सभ्यता, सस्कृति और धरती को कोकीन का इजेक्शन लगा दिया है। तभी तो–

"निस्पन्द हो गया है अब संस्कृति का सारा स्नायु–जाल!
निर्जीव पड़ गई है अब हम सबकी आत्मा की खाल!" [5]

1 हम शिल्पी सत्रास के 'मानव–सस्कृति चैकअप', पृष्ठ 49
2 वही, धोखा हुआ', पृष्ठ 80
3 वही 'मानव–ज्वर', पृष्ठ 17
4 वही, सकीना का लोटा', पृष्ठ 25
5 वही कोकीन का इजेक्शन' पृष्ठ 38

'तरुण' ने शोषितो के प्रति सहानुभूति, लगाव प्रदर्शित करते हुए सूदखोर बनियों तथा धन्ना सेठों के विरुद्ध अपना रोष व्यक्त किया है। 'गिरवी' शीर्षक कविता में यह चेतना और पुष्टता लिए हुए है। कवि को अलौकिक सत्ता उस विराट महाजन सूदखोर की तरह लग रही है जिसके पास आदमी की सॉस, धडकन, गीत और सुनहरे सपने सभी गिरवी रखे हैं। इसी आलोक से आलोकित होकर कवि 'मेरी चेतना ठगी गई' शीर्षक कविता में उनके चेहरे गिनाता है जिन्होने उसकी चेतना से छल किया है–

"देखी आदमी की छटपटाती–फड़फड़ाती हुई जिन्दगी,
तो मुझे लगा–
कि चन्दन–पवन, नन्दन–वन, कामधेनु और कल्पवृक्ष,
सुमेरु, अप्सरा, देवता, शास्त्रवचन और अमृत–कलश–
हाय, क्या सब मिलकर अब तक
मुझसे, मेरी चेतना से करते रहे दिल्लगी–
दिन दहाड़े मुझ भोले सहज–विश्वासी
नश्वर, मृण्मय से कुटिल छलना और ठगी!" [1]

'चोचो का खेल', स्वतन्त्र भारत की जनता का शोषण करने वाले कर्मचारियों, व्यापारियों और नेताओं को बेनकाब करती है। साथ ही भारतीय जनता की स्वीकारवादी प्रवृति को व्यंग्य का आधार बना कवि कहता है–

"पापा, प्लीज! देखने दो हमें चोंचों का यह खेल,
बड़ा मजा आ रहा है, अहा, चल रही हैं जैसे गुलेल!
बताओं न?– गिलबिला, गिलबिला–
तश्तरी में यह क्या है जो टूटता, जुड़ता, बिखरता और बनता?"
"कुछ नहीं राजा बेटा, यह तो है स्वतन्त्र भारत की जनता!" [2]

'धन्ना सेठ' कविता में वर्तमान मानव–जीवन की विसगतियॉ, उजागर की गई है। पूंजीवाद का रहस्य समझाता हुआ कवि शोषकों पर व्यग्य–नेजे से घातक वार करता प्रतीत होता है–

"फर्टिलाइजर से, जल्दी ही, चाबीनुमा ढंग से
पक कर, ह्रष्ट–पुष्ट हो, बन जाते हैं,
ऊंचे झरोखे के धन्ना सेठ।" [3]

जोकरों की पोशाक पहन, हाथ में विज्ञापनी भोंपू लेकर तथा अपना चेहरा मुखौटे में छिपाकर रंग बदलने वाले गिरगिट की तरह आज का नया आदमी अपनी पहचान स्वयं बना रहा है, सांस्कृतिक मूल्यों को ताक में रखकर नवमानव अपने ही विनाश में जुटा हुआ है। 'नव आदमी' कविता में कवि आज के मानव की हास्यास्पद स्थिति का चित्रण करता हुआ इस विज्ञापनयुक्त सृष्टि पर करारा व्यंग्य करता दृष्टिगोचार होता है–

"सिर पर पिरेमिडी लम्बी चमकनी टोपी–
जिस पर चढ़कर लगा हे फुँदना, कलगी,
जैसे वेदरकॉक!
हाथ में भोंपू–विज्ञापनी,

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'मेरी चेतना ठगी गई', पृष्ठ 63
2 वही, 'चोचो का खेल', पृष्ठ 41
3 वही, 'धन्ना सेठ', पृष्ठ 48

रुई के चकते चिपके हैं बदन पर, चेहरे पर!" [1]

'यस सर' कविता मुडियॉ हिलाते हिनहिनाते उन नव–अभिजात एव तथा कथित सफल एव परिष्कृत बुद्धिजीवियों की प्रवृति को व्यक्त करती है जिनके पास रीढ नाम की चीज नहीं होती। कवि को ऐसा अनुभव होता है जैसे समुन्दर भी नौकर–शाहियों की तरह अपने बॉस–आंकाश को अमेद से यस–सर, यस सर कह रहा है–

"खोखले, जड़ाऊ आसमान के चरणों में
धीर–गम्भीर संयत स्वर में
अदब के साथ
मुंडी हिला–हिला कर
कह रहा है–
यस सर, यस सर !" [2]

कवि 'तरुण' के स्वय के विचार भी इस सन्दर्भ मे यह है– ***"काव्य के माध्यम से मैं जीवन–सत्यों के साक्षात्कार के लिए अपनी क्षमता के अनुसार और जीवन–स्थितियों की चौहद्दी में निरन्तर अपने भीतर भटका हूँ– भटकता रहा हूँ। इस भटकने का भी अपना एक सुख रहा है। अपूर्णता, भटकन, अतृप्ति की अनुभूति का सुख भी कवि पूरा भोग सके, यह कोई छोटी सर्जनात्मक उपलब्धि नहीं।"*** [49]

अपनी इसी कोलम्बसी–यायावरी प्रवृति से जीवन के ज्वार–भूकम्पों को झेलता, महसूसता पूरी शिद्दत से कवि स्वयं अनुभूतियों के घोर गह्वर मे स्वय को उतारता है और जब भी बाहर निकलता है, साथ में ले आता है एक अलभ्य काव्य–मोती। 'हम शिल्पी सत्रास के' – काव्य–संग्रह की कविताएँ उपरोक्त कसौटी के आधारो पर सही उतरती है। इनमे कवि की सम्पूर्ण–जीवन–दृष्टि को दृष्टिगत किया जा सकता है।

व्यग्य जब आक्रामक रुख अख्तियार कर लेता है तो कह सकते है कि व्यंग्यकार ने व्यवस्था की चालाकी भॉप ली है, लेकिन जब व्यग्य में सजीदगी से भरपूर संवेदना आ जाये तो समझ लेना चाहिए कि व्यंग्यकार लेखक या कवि संवेदना को पहचानता ही नहीं महसूसता भी है। उदाहरण के तौर पर 'एकेडेमिक' कविता में छिपकली द्वारा किए जाने वाले शिकार के तौर–तरीके को कवि व्यवस्था पर एक तीखा व्यग्य करता हुआ बतलाता है– दफतरी उछाड़–पछाड के तरीके–

"सरकती नीरव–नीरव,
काम एण्ड क्वाइट,
लक्ष्यबद्ध,
मौन,
सब कुछ कितना सुथरा और प्रशान्त!
ए ए ए ए
ख च च च!
खच्च खच्च।
लील गई पूरी नीरवता से
अपने शिकार को, अपने भक्ष्य को, बारीक टैकनीक के साथ।

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'नव आदमी', पृष्ठ 31
2 वही, 'यस सर', पृष्ठ 20

नीट एण्ड क्लीन--

सब कुछ--

कितना ऍकेडेमिक!

युनिवर्सिटी--लाइक!" [1]

डा0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' ने यथार्थ का चित्रण कविता के माध्यम से अति सूक्ष्म व जीवन्त है। कवि के अपने शब्दों में भी: ***"आज का मेरा क्षण अशोक वन में सीता से आगे सहसा ही टपक पड़ी मुद्रिका की तरह तो कहीं से आ नहीं टपका। वह मेरे मानस--जीवन के इतिहास में से ही तो उद्भूत हुआ है। उसके पीछे चेतना के बहुत--से सूक्ष्म रेशे, तन्तु, स्नायु, कोशिकाँए संलग्न हैं।"*** [50]

यथार्थ चित्रण में कवि ने अशिव और घृणित से परहेज नहीं किया-- किन्तु इन्हें कविता की मूल विषय--वस्तु के रूप से लेकर (बुराई के नाम पर जिसे छिपाने की चेष्टा की जाती है) लाकर सबके बीच में रख दिया है। यथार्थ का चित्रण करते हुए कहीं भी सायासता दिखाई नही पडती-- मतलब, यथार्थ भोगा एवं महसूस किया लगता है, न कि तरांशा हुआ। जीवन के उतार--चढाव एव कटु सत्यों तथा जीवन की नियति को कवि 'अधूरी बनी तस्वीर' कविता में इस प्रकार व्यक्त करता है--

"पतले पतंगिया कागज पर

काचे रंगों की

अधूरी बनी तस्वीर--

तड़ातड़--आई बारिश के झोंको में सहसा भीग गई!

और -- तभी

आँधी के झपट्टे में--

काँटेदार झाड़ियों में, वह

तड़ाक से, वेग से उड़कर जा लगी!

कुछ ऐसी--सी लगी मुझे जिन्दगी!" [2]

'दिव्याभास . एक आत्मानुभूति' नामक कविता मे एक सत्ता समर्थक न होने वाले 'जैनुइन' जो जन--समर्थक तो हैं, के उत्पीडित एव उपेक्षित व्यक्तित्व को अभिव्यक्ति देता है कवि--

"मैं मानव!

मैं कवि!

मैं लेखक--चिन्तक!

मैं प्रोफेसर!

हूँ

जेठ की बाढ़मेरी लू में

रेतीले टीबों में दिशाहीन असहाय उड़ता--फिरता

सड़े प्याज का

एक अदना, झीना, झुलसा

छिलका

---

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'एकेडेमिक', पृष्ठ 26

2 वही, 'अधूरी बनी तस्वीर', पृष्ठ 22

आज हुआ, मुझे यह दिव्याभास–
सचमुच हुआ।" [1]

कवि श्री 'तरुण' का विद्रोह स्वर केवल आक्रोश के स्तर तक ही सीमित नहीं रहा कि गाली दी और बस, मन की भडास निकाल दी। बल्कि इससे आगे बढकर कवि विद्रोह के स्वर को आन्दोलन रूप मे अभिव्यक्त करता है। जिनमें प्रमुख है– 'लीरिक नही, एक चीख गीत', 'बीज वह अनादि', 'अस्तित्व अपना', 'चीख और चुप्पी', 'मेरी चेतना ठगी गई', 'सफेद कबूतर मेरे', 'मेरी कविता', 'गीत वीराने मे', 'सपना मकडी के जाले', 'अब जाकर' तथा 'मानव', 'नरम रोटी–चिकनी' तथा 'अभियोग पत्र' आदि।

उदाहरणार्थ, 'अभियोग–पत्र' कविता मे से–

"गुलेल–आहत चिड़िया–सी–
लहूलुहान,
जाग उठ्ठी फण–उठाई जनता का–
आततायी सत्ता के नाम
तुरन्त जवाबदेही के लिए
डंको से लिखा
खुला, हस्ताक्षरित
अभियोग–पत्र।" [2]

इस 'सग्रह' की हर कविता अपने 'यूनीक' सन्दर्भ के कारण एक प्रभामडल रचाती है और इसके आलोक में लिपट–सन कर शव्दो का पुनर्संस्कार होता है। बिम्बो का झीना आवरण कविताओ को सुन्दरता प्रदान तो करता ही है, साथ ही कवि को मानवीय सवेदना मे सूक्ष्म एवं सूक्ष्मतर पैठ होने के द्योतक भी है। कवि की ये कविताएँ युग–बोध–जनित मार्मिक संवेदना का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'नरम रोटी–चिकनी' का उदाहरण दृष्टव्य है–

"पर यह आकाश मुझे तो लगता है–
एक बहुत बड़ी फैली ब्रेड या रोटी
सूर्योदय–सूर्यास्त के इन्द्रधनुषी रंगों वाले प्रकाश से जड़ी
चिकनी मखमली चाँदनी के बटर से गहरी चुपड़ी
खुशबुदार, मीठे, मुलायम–
एपल, आम व अनानास के जैम से लिथड़ी।" [3]

इन्ही कविताओ के बीच एक गीत 'मै बनवासी होता' अपने विशाल कैनवास एव भावो की विराटता के लिए मानव की सास्कृतिक टीस को उभारता है। तथाकथित सभ्यताओ से उकतायी मानवता के लिए बनवासी अर्थात् आदिवासी स्वतंत्रता एवं पवित्रता का अन्यतम उदारहण है। इस गीत मे मानव–मन के उल्लास और आनन्द के सहज स्रोतो को सुखाने वाली आज की सत्वभक्षी, जीवनग्रासी, छद्मवेशी सभ्यता के प्रति गहरा अवसाद और आक्रोश व्यक्त करते हुए डॉ0 'तरुण' ने युगीन यथार्थ की विषमताओं को बडे मार्मिक रूप में व्यक्त किया है–

"कुसुम–कीट–सा हाय, सभ्यता ने मुझको चर डाला,
मन पर जाला, मुख पर ताला और हँसी पर पाला!

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'दिव्याभास एक आत्मानुभूति', पृष्ठ 24
2 वही, 'अभियोग पत्र', पृष्ठ 35
3 वही, 'नरम रोटी–चिकनी', पृष्ठ 59

मैं प्रकाश का अमर–पुत्र हा! मुक्ति–लोक का प्राणी–
आज रह गया– मूल उड़ाने मुक्त, रसीली वाणी–
दूध–भात के लिए स्वर्ण–पिंजरे का बनकर तोता!
मैं बनवासी होता!" [1]

'तरुण' को परिवेश की जकडन, यथार्थ की जरुरत और मूल्य–संक्रमण ने उन्हें एक प्रश्नाकूल व्यक्ति बना दिया जैसे–जैसे परिस्थितियॉं बदलती गई उनकी कविताओ का स्वर अधिक धारदार और पैना होता गया। क्योंकि उन्होंने आज के मनुष्य का पल–पल बदलता रूप देखा, इस भयावह परिवेश की यातना भोगी और मूल्यों के टूटने का स्वर अपने कानों से सुना। वे इस टूटन के दर्शक तो नही; भोक्ता हैं इसलिए अब वे देखते हैं–

"सुबह– पीला
दोपहर – नीला
शाम को– लाल
और रात को श्याम
– गिरगिटिया हो गया है अब तो आदमी तमाम।" [2]

और वे देखते हैं यह भी कि चॉंद तो बहुत पहले से स्मगलरो का साथी था ही, अब तो सूरज में भी वह तमतमाहट नहीं रही जो अॅंधेरे की सत्ता को ललकार सके। वे प्रतीकात्मक शैली में सूर्य को ललकारते हैं–

"सच्चा हो तो अधर्म–अन्याय की सृष्टि को भून दे
अंधकार बढ़ता जा रहा है– क्यों न रे
एक बार हड़कम्प पैदा करता हुआ–
गरजता है वह बेशरम–
सत्यमेव जयते नानृतम्।" [3]

मानव–संस्कृति ने कुम्भकार की भॉंति युगान्दोलनों की हथेलियों– उंगलियों की गहरी दाब दे–देकर, अंगूठों का नुक्का दबा–दबा कर धरती पर उतार–उतार कर असहाय, रीढ–हीन शिश्नोदरी ढीली–ढीली गिलबिली–गिलबिली मानव आकृतियॉं रख दी है, जिन्हे विश्व युद्धो के आवे मे पकाना शेष रहता है। विश्वयुद्धो में मानवता के विनाश की चिन्ता कवि की 'कुम्भकार' शीर्षक कविता में स्पष्टत बिम्बित हो रही है–

"अन्तर्दृष्टिशील
इतिहास–कुम्भकार–
सस्मित व विश्रामपूर्वक,
अपने दोनों हाथों से
अर्थ–राजनीति–विज्ञान के डण्डे से
मानव–संस्कृति का चाक घुमाता पूरे वेग से–
नियति की गीली–मटियाई डोरी से काट–काट कर
सॅंभाल–सॅंभाल कर, उतार–उतार

---

1 'हम शिल्पी सन्त्रास के' 'मै बनवासी होता', पृष्ठ 71
2 वही, आदमी का रक्त', पृष्ठ 76
3 वही, 'सूरज–था कभी', पृष्ठ 88

रखता जा रहा धरती पर—
असहाय, रीढ़—हीन
शिश्नोदरी—
ढीली—ढीली गिलबिली—गिलबिली मानवाकृतियाँ!
बरतन—बासन, हथपिटाई के बाद
विश्व युद्धों के आवे में पकाना तो है अभी शेष!" [1]

जन—जीवन की गहरी जडों और युग बोध की सच्चाईयों से कवि का गहरा सरोकार है। उसका प्रमुख उद्देश्य जनमत तैयार करके संघर्ष करना है। 'तरुण' को अपनी धरती से गहरा लगाव है। जिसकी सुगन्ध संग्रह की अनेक रचनाओं में विद्यमान है। कवि को अपनी धरती, अपने समाज, अपने देश और अपने देश की जनता की संघर्ष चेतना पर पूर्ण विश्वास है जिसके आलोक में उसका स्वर आशान्वित हैं—

"अब जाकर नकाबें उघड़ रही है, खिसक रही हैं,
अब जाकर बैसाखियाँ हटाई—छीनी जा रही हैं,
हड़बड़ी अब मची है, हड़कम्प फैले हैं—
हाँ, अब खुलेगा ऋचाओं का सौन्दर्य,
अब प्रकटेगा धरती पर कुँवारा सौकुमार्य,
चन्द्रोदय—सा उदित होगा—
अब मानव का प्रथम, मूल
आदिम स्वर!" [2]

आज का परिवेश कितना स्वार्थमय, घिनौना, कुरूप, यन्त्रणामय तथा विकृत हो गया है, इसका प्रभाव कवि 'तरुण' ने अपनी बेलौस, तीखी, पैनी व सीधी चोट करने वाली कविताओ मे प्रस्तुत किया है। कवि युग के प्रति अपनी वितृष्णा एवं विवाद व्यक्त करता हुआ कहता है—

"आज मेरी साँस भी हो गई है
उसी पुरानी कुहरिल—कसैली, धुमैली—अंधी
घुटन का ही प्रतिरूप !
युग—पीड़ा से!
तस्कर युग!" [3]

'लो पकडो लँगोटा' कविता यह प्रमाणित करती है कि आज की जनता को देश की राजनीति किस प्रकार भ्रमित करती है और कैसे जनता चुनावी राजनीति का शिकार होती है।

'देश सेवक' शीर्षक कविता में चुनावी सभ्यता से प्रेरित राजनीति, शोषण की नींव पर खडा समाज, अमानवीय व्यवस्था, अकर्मण्य बने बुद्धिजीवी वर्ग की नपुंसक मनोवृत्ति आदि के सम्बन्ध में कवि ने अपनी तीखी प्रतिक्रियाएँ प्रकट की हैं जो हास—परिहास एवं व्यंग्य का जमा पहनकर यथार्थ का रूप मुखरित करती हैं—

"न कमल का, न कमलिनी का,

---
1 'हम शिल्पी सन्त्रास के' 'कुम्भकार', पृष्ठ 29—30
2 वही, 'अब जाकर', पृष्ठ 84—85
3 वही, 'आज, मेरी साँस', पृष्ठ 55

न हाथ का, न हथिनी का,
पर—
देश—सेवा के लिए मचल—उठा—सा,
अगले चुनाव के लिए दही की मथानी—सा उछल उठा—सा,
एक निष्काम गुलफल्ले भावी सांसद का
पदासीन होता
गौरवशाली नितम्ब!
आँधियों में डगमगाती
अपने देश की नौका का एक—मात्र दृढ़—अवलम्ब!" [1]

'एडमिनिस्ट्रेशन' जैसी शान्त एवं व्यग्यात्मक कविता कुछ ही पंक्तियो मे राजनीति की विद्रूप—स्थितियो को उभार देती है— और व्यवस्था के पीछे छिपी कालिख को सामने ले आती है—

"यह कोई बच्चों का खेल नहीं— इसमें होता है बड़ा टेंशन!
यह है एडमिनिस्ट्रेशन!
जिनकी आँखों के आगे सर्वोपरि है नेशन
न कि ग्रेचुइटी, प्रोविडेंट फंड और पेंशन
मजाक नहीं है, वे ही करते हैं एडमिनिस्ट्रेशन!
यह नहीं है ऐसन—वैसन,
यह है— एडमिनिस्ट्रेशन!" [2]

'गोकुल की पकौडियॉ' शीर्षक कविता में देश के इस कटु यथार्थ को चित्रित किया है कि किसी मेहनतकश का श्रम और प्रतिभा से अर्जित किया प्रजातान्त्रिक भोग्य ऊपर का ऊपर ही किसी वी0 आई0 पी0 या उसके चहेते के लिए फोन, चाय या लंच पर हुई चिकनी गुफ्तगू के द्वारा जादुई गति से अदृश्य रूप मे उड जाता है—

"चीलें आकाश में आ—आकर
मँडराने लगती थी प्रतीक्षा में नित प्रातः टाइम—सर!
झपट्टा मार—मार, धरती पर गिरने से पहले ही—
पकौड़ियाँ उठा ले जाती थी— सर्र, सर्र.....
जैसे, अचानक—
मेरा, आपका, किसी प्रतिभाशाली मेहनतकश का
श्रम और प्रतिभा से सुअर्जित
प्रजातान्त्रिक भोग्य—
ऊपर का ऊपर ही, अदृश्य जादूई गति से
फोन, चाय, लंच या डिनर पर हुई चिकनी गुफ्तगू के तहत
उड़ जाता है—
किसी वी0 आई0 पी0 या उसके चहेते से

---
1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'देश—सेवक', पृष्ठ 43
2 वही, 'एडमिनिस्ट्रेशन', पृष्ठ 77

— परम सुयोग्य!" [1]

बावजूद इसके कवि का आदर्श उसे स्वस्थ परम्परा के उन रूपों से जोडना चाहता है जहाँ पुरुषार्थ, गर्वोन्नत मस्तक, संगीत की लहरी, अन्याय का प्रतिकार और स्नेह के आलिगन होते हैं। कवि को अपनी मिट्टी से लगाव है क्योंकि वह धरती का प्रतिनिधि है। आकाशी ताम–झाम उसके लिए ऐन्द्रजालिक है–

"हम तो हैं प्रतिनिधि–
नाजुक, विश्वासमयी, मीनी–मीनी महकती
शीतल दूब के;
सरल, अल्हड़, लय–प्राण मुक्त लहर के,
सौंधी–सजल उपजाऊ मिट्टी की सुवास के!
हम नहीं हैं प्रतिनिधि–
जड़ाऊ, खोखले, तामझामी विराट आकाश के!" [2]

'तरुण' तो अपनी कविता को लाल–सुदृढ फेफडो से पहाड़ी हवा की–सी सॉस धौकती, घास का गट्ठर लिए, चिडिया के शोर में अलमस्त खेत से जा रही ग्राम–विरहिणी जैसी अथवा जीवन–रस–पूर्ण सुडौल गोल–गोल पुष्ट चमकीले मुक्ताभ टमाटरो जैसी या फिर चौडे, खुले, नीले आकाश के नीचे हरहराते पहाडी झरने जैसी देखना चाहता है–

"रहे मेरी कविता–
ग्राम–विरहिणी सी
खेत में से जो जा रही हो अलमस्त,
घास का गट्ठर लिए, हँसिया लिए;
और,
चिकनी हाँडी मट्ठे की सरस–सलोनी;
चौड़े–चौड़े नीले आकाश के नीचे, जाती–सी
चिड़ियों के शोर में!

x x x x x x

रहे मेरी कविता, चट्टानी, गुलमुहरी,
हरहराते पहाड़ी झरने–सी!
चौड़े, खुले, नीले आकाश के नीचे!" [3]

डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार, ***"'हम शिल्पी संत्रास के' संकलन की कविताओं में कवि 'तरुण' ने संत्रास और पीड़ा को पाठक के लिए संवेद्य बनाकर जिस शैली–शिल्प में प्रस्तुत किया है वह अप्रतिम है। युग–बोध और युग–चेतना को इसमें यथार्थ भूमि पर प्रतिष्ठित किया गया है। कवि के प्रौढ़ चिन्तन–मनन की विकासात्मक दिशा का परिचायक यह काव्य–संकलन हिन्दी–कविता के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखता है।"*** [51]

डॉ0 रामदरश मिश्र ने इन कविताओ को विसगतिग्रस्त यथार्थ के ठीक आमने सामने पाया है– ***"इस संग्रह***

1 'हम है शिल्पी सत्रास के' 'गोकुल की पकौडियॉं', पृष्ठ 45
2 वही, 'प्रतिनिधि', पृष्ठ 81
3 वही, 'मेरी कविता', पृष्ठ 67–68

में आपका कथ्य और तेवर एकदम बदला हुआ है। आप आज के विसंगतिग्रस्त यथार्थ के ठीक आमने सामने हैं। ये कविताएँ बहुत बेबाकी के साथ समकालीन जीवन की बेचैनियों को खोलती हैं। कविताएँ आपके संस्कारी कवि की भीतरी शक्ति पा सकी हैं।" [52]

डॉ0 रणजीत 'तरुण' के काव्य को जीवन की वास्तविकताओं और विडम्बनाओं के नजदीक मानते हुए कहते हैं– *"'हम शिल्पी संत्रास के' में 'तरुण' जी की कविताएँ जीवन के यथार्थ से चुने हुए उपयुक्त बिम्बों के माध्यम से आज की जिन्दगी की वास्तविकताओं और विडम्बनाओं को सटीक अभिव्यक्ति देने में कुशल हैं। जीवन की छोटी–छोटी सच्चाइयों को कभी व्यंग्यात्मक और कभी मर्मस्पर्शी ढंग से कहने वाला यह परिपक्व–प्रौढ़ कवि सचमुच ही वर्तमान जीवन के संत्रास का शिल्पी हैं।"* [53]

'तरुण' के काव्य–विषय–परिवर्तन को डॉ0 प्रेम शंकर ने उजागर करते हुए कहा है– *" 'तरुण' जी रोमांटिक सौन्दर्य जगत् से चल कर वे आज के जीवन–यथार्थ तक आए हैं। 'हम शिल्पी संत्रास के' कविता संकलन में समय के दबावों को आसानी से देखा जा सकता हैं उनकी एक प्रमुख विशेषता वह अमानवीयकरण है जो समाज को बौना बना रहा है। समय के साथ न्याय कर सकने के लिए उन्होंने नये मुहावरे को बिना संकोच के स्वीकार कर लिया है, और यह है उनके विकसित होने, फैलते व्यक्तित्व का प्रमाण!"* [54]

डॉ0 रणधीर उपाध्याय 'हम शिल्पी संत्रास के' को यथार्थ–बोध का जीता–जागता दस्तावेज मानते हैं– *" 'हम शिल्पी संत्रास के' प्रारम्भ से अन्त तक पढ़ गया। समसामयिक यथार्थ का जो चित्रण आपने इस कृति में किया है, मुझे उसने झकझोर दिया। बार–बार यही कहता रहा कि कवि ने जो अनुभूति की है, वही मैंने, इसने, उसने– सब ने की है। यथार्थ–बोध का जीता–जागता दस्तावेज है 'हम शिल्पी संत्रास के'।"* [55]

डॉ0 भंवर लाल जोशी के अनुसार– *" 'हम शिल्पी संत्रास के' को मैंने आद्योपान्त पढ़ा है। आपकी कलम में व्यंजना की तीव्रता एवं चोट करने की असाधारण क्षमता है। इतनी प्रखरता और श्लिष्ट शालीनता मेरे देखने में अन्यत्र नहीं आई। अन्य भी अनेकानेक गुणों से वह उफनती–सी श्रेष्ठ कृति है। इतनी स्पष्ट चोट करने वाले साहित्यकार इस युग में बचे ही कितने हैं।"* [56]

कविता–सग्रहों की भीड मे 'तरुण' के व्यक्तित्व को सर्वथा अलग पहचान दिलाती इस सग्रह के बारे में डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी के विचार ध्यातव्य हैं– *"मेरे ख्याल में 'हम शिल्पी संत्रास के' शीर्षक के बावजूद यह संग्रह अवचेतन की कुण्ठाओं से मुक्त है। उसमें परम्परा के साथ प्रगति है, सौन्दर्य के साथ शिव है और शहर के साथ ग्राम है। उसमें व्यंग्य, करुणा, दर्द, यातना, शोषण आदि के साथ आस्था और जिजीविषा है। 'स्व' का विस्तारीकरण है जो एक सार्थक रचना की शर्त होती है।"* [57]

'तरुण' की एकमात्र होनहार सन्तान अमित (अमिताभ), जो कि अपने जीवन के 22 वसन्त भी न देख पाया और ब्रेन–हेमरेज के कारण असामयिक काल का ग्रास बन गया। उसी होनहार, प्रतिभावान, यशस्वी, गुणी, हर काम में अव्वल अमित की स्मृति मे 'हम शिल्पी संत्रास के' काव्य संग्रह मे 'अमित स्मृति कुज' में 'तरुण' की छह कविताएँ– 'नियति.नगा नाच', 'अमर अभिलेख', 'काली दीवाली', 'पुत्र मरण जन्म–गॉठ', 'शान्त' और 'स्मृति का गुलाब' पुस्तक के दूसरे भाग–'अमित–स्मृति कुज' मे सकलित है।

"दोनों हाथों में जल्दी–जल्दी चलती
अपनी लम्बी भोथरी कैंची से
हमारा चिकना, सुनहला, रेशमी धागा काट गई–" [1]

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'नियति नगा नाच', पृष्ठ 89

'नियति का यह नंगा नाच' निस्सन्देह कवि को विचलित करता है। किन्तु अपने सामाजिक दायित्व को इस दुःख भरी घडी में भी कवि नही भूलता और अपने समस्त दुख को मानवता और व्यापक सामाजिकता में समाहित कर 'युवक' के अगारों, चिनगारियो से ज्वलन्त कंचनाक्षरो मे लिखे प्रखर–उत्कट जिजीविषा, लौह–सकल्प एवं वज्रोपम आत्मविश्वास का दमकता पलाश–गुलमुहरी अग्निलेख देख रहा है–

"अंगारों–चिनगारियों से ज्वलन्त कंचनाक्षरों में लिखा
तुम्हारी प्रखर–उत्कट जिजीविषा, तुम्हारे लौह संकल्प,
तुम्हारे वज्रोपम आत्मविश्वास का
यह दमकता पलाश–गुलमुहरी अग्नि–लेख!

x x x x x

ध्रुव–नक्षत्र की तरह चमकता रहे सदा तुम्हारा यह
कंचन अभिलेख
तुम्हारे प्रियजनों की मन–आत्मा के विराट् आकाश में!
विराट् कल्पना का अमर–अनन्त साक्षी बन कर!" [1]

पुत्र–शोक 'मानवीय जीवन चेतना के महासमुद्रो की परिक्रमा' में 'आकांक्षा का सौन्दर्य' को नया अर्थ दे गया है। इसलिए यह रागात्मकता पूर्णत सार्वजनिक हो उठी है। यही इन कविताओं की सार्थकता है।

निष्कर्ष रूप मे हम यह कह सकते है कि 'हम शिल्पी सत्रास के' काव्य संग्रह जहॉ एक ओर घुटन, पीडा, मानसिक द्वन्द्व, सत्रास, अमर्ष, युगबोध, अन्तर सघर्ष, सामाजिक विषमता, राजनीतिक दल, आर्थिक शोषण आदि का काव्य है वहीं दूसरी ओर जीवन के उच्चादर्श एवं नव मूल्यों की प्रस्तावना का काव्य है। इन दोनो स्थितियों के मध्य कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों तथा आत्मिक क्लेश की अभिव्यक्ति मुखर हुई है। आधुनिक कविता के विकास में इस काव्य संग्रह का महत्त्वपूर्ण स्थान निश्चित है।

---

1 'हम शिल्पी सत्रास के' 'अमर अभिलेख', पृष्ठ 90

'तरुण–काव्य ग्रन्थावली'

'तरुण' काव्य ग्रन्थावली', डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक, कवि श्री रामेश्वर शुक्ल अचल तथा कवि श्री कुमार विमल द्वारा सम्पादित कवि डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' की लगभग सवा चार सौ विषयानुसार वर्गीकृत कविताओं का सचित्र–सजिल्द संकलन ग्रन्थ है जो सन् 1988 मे नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली द्वारा भव्य रूपाकार में प्रकाशित हुआ और जिसका विमोचन 1989 में भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ0 शंकर दयाल शर्मा द्वारा हुआ। यह ग्रन्थ कवि की गत छह दशकों की अखण्ड निष्ठामयी काव्य–यात्रा का एक प्रमाणिक दस्तावेज है तथा कवि की समग्र सर्जनात्मक विकासात्मक काव्य–चेतना का उज्ज्वल दर्पण है।

'तरुण– काव्य ग्रन्थावली' में विषयानुसार बाइस खण्डों मे विभाजित किया है। जिसमें 'युगबोध और युग–संत्रास' की कविताओ को प्रथम स्थान दिया है। आज का मनुष्य बहुरूपिया हो गया है वह युगीन संत्रास की पीड़ा से गिरगिटिया हो गया है। आज के मनुष्य का स्वाभिमान खण्डित हो गया है। युग–बोध और युग–सत्रास को इस खण्ड की कविताओं में स्पष्ट देखा जा सकता है। 'आदमी का रक्त', 'जीवन–पतंग', 'धोखा हुआ', 'चोचो का खेल', 'मै गा न सकूँगा', 'गिरवी', 'बीज वह अनादि', 'सूरज–था कभी' आदि कविताओं मे वेदना व पीडा स्पष्ट झलकती है। 'चोचो का खेल' की समाप्ति के साथ सत्य को उद्घाटित करने वाले कवि के ये शब्द कितने मर्म–स्पर्शी है–

"बताओ न? – गिलबिला, गिलबिला–
तश्तरी में यह क्या है जो टूटता, जुड़ता, बिखरता और बनता?"
"कुछ नहीं राजा बेटा, यह तो है स्वतन्त्र भारत की जनता!" [1]

'विद्रोह और आक्रोश' शीर्षक खण्ड की कविताओ में ऊर्जा, स्फूरणा और उत्साह की गूंज है। कवि मानवता के लुठित स्वर को क्राति की प्रचण्ड ठोकर से दूर करना चाहता है। कवि उस जीवन की आकाक्षा करता है जो ऑधी या तूफानी नदी–सा हो, जिसमे तडपन हो, ज्वाला हो और जो मेघ–मल्हार–सा घोषमय हो–

"जीवन लूँगा मैं तो आँधी, नदी या तूफान–सा,
जिसमें तड़पन हो, ज्वाला हो, गुंजन, मेघ–मलार हो!" [2]

'व्यग्य और विसंगति' शीर्षक खण्ड में गहरे व्यंग्य के साथ आज के आधुनिक समाज की विद्रूपता, व्यवधान, असंगति का वर्णन है। 'नाखून–भॉत–भॉत के', 'देते हैं', 'सॉप–आवास समस्या', 'देश सेवक' में यथार्थ को व्यंग्य के रूप में दर्शाया है।

'मानव–ज्वर' कविता में गहरे व्यंग्य का चित्रण किया है–

"अब मलेरिया के मच्छर
आदमीदानियाँ तान कर सोया करेंगे:
इस चिन्ता से–
कि कहीं हमें
विषम संक्रामक मानव–ज्वर न हो जाय!" [3]

'जीवन सत्त्व' शीर्षक खण्ड में कवि जीवन के सघर्षों को झेलने का सदेश देता है वह विपदाओं से जूझना चाहता है,

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' , 'चोचों का खेल', पृष्ठ 26.
2 वही, 'अस्वीकार', पृष्ठ 36
3 वही, 'मानव–ज्वर', पृष्ठ 43

सत्रास व पीडा को झेलता है कष्ट और बाधाओ पर विजय प्राप्त करना चाहता है। वह स्वय को तामझामी, खोखले व जडाऊ आकाश का प्रतिनिधि न मानकर धरती की सौधी महक का कवि मानता है–

'हम तो हैं प्रतिनिधि–
नाजुक, विश्वासमयी, भीनी–भीनी महकती
शीतल दूब के;
सरल, अल्हड़, लय–प्राण मुक्त लहर के,
सौंधी–सजल उपजाऊ माटी की सुवास के!' [1]

'प्राण–ज्योति एवं जीवनोल्लास' शीर्षक खण्ड की रचनाएँ ओजस्विता की ज्योति और जीवन के उल्लास से लबालब हैं। 'संघर्ष–पथ पर' शीर्षक गीत में 'तरुण' गहरे आत्मविश्वास के साथ अपनी नाव अगाध जल में छोड देता है–

"जब छोड़ सुख की कामना,
आरम्भ कर दी साधना,
संघर्ष–पथ पर बढ़ चले, फिर फूल क्या, अंगार क्या!
संसार का पी–पी गरल–
जब कर लिया मन को सरल,
भगवान् शंकर हो गये, फिर राख क्या! शृंगार क्या!" [2]

'तरुण' ने अनेक उद्‌बोधन गीत लिखे है जो किसी भी युवा–हृदय मे प्राण फूँकने की शक्ति रखते है। जो किसी भी थके हारे मनुष्य को अन्धकार से निकाल कर प्रकाश का रास्ता दिखाता है। 'पंछी, पिंजरे के तोड द्वार' 'बटोही ठण्डी सॉस ने ले', 'गाता चल तू गीत', 'मॉझी, साहस छोड न देना', 'ओ चट्टान से मल्लाह', 'लौह–पुरुष, तू रोता क्यो हैं?' 'जवानी आ गई मेरी', 'जाग, मेरे जीवन की आग', 'आकाश का निमन्त्रण', 'यों काम नहीं चलता जग मे', 'नव शक्ति', 'उद्‌बोधन' आदि गीत ओजस्वी स्वर मे है जो पाठक के हृदय–पटल पर अमिट छाप छोडते हैं।

ये गीत साहस, तेज, वीरता आदि भावों से पूर्ण है।

'जीवन मूल्य और संस्कृति–बोध' शीर्षक खण्ड में समाज की विषमताओं, विसंगतियो एवं विद्रूपताओं को रेखांकित करते हुए जीवन–दर्शन पर एक अभिनव और आलोकमयी दृष्टि डालते हैं। 'हृदय का मूल्य' कविता मे कवि के हृदय की अन्तर्वेदना इन शब्दों में फूट पडी है–

"एक चूड़ी टूटती–तो हाय, हो जाता अमंगल!
मेघ में बिजली कड़कती–काँपता सम्पूर्ण जंगल!
भाग्य के लेखे लगाते–एक तारा टूटता तो!
अपशकुन–शृंगारिणी के हाथ शीशा छूटता तो!
दीप की चिमनी चटकती–चट तिमिर का भय सताता!
कौन सुनता स्फोट? पर, कोई हृदय यदि टूट जाता!" [3]

'जीवन–चिन्ता' खण्ड मे 'तरुण' आज के समाज मे व्याप्त समस्याओ से जूझता दिखाई पड़ रहा है। मनुष्य ने

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'प्रतिनिधि' पृष्ठ 67
2 वही, 'सघर्ष–पथ पर', पृष्ठ 72
3 वही, 'हृदय का मूल्य', पृष्ठ 91

भौतिक सुख–सुविधाएँ तो जुटा ली है पर अन्दर से वह बिलकुल खोखला है। कवि ने इस यथार्थ को पूरी व्यजना से दर्शाया है–

"हम सब साधन–सम्पन्न, किन्तु मन चिर दरिद्र!
रे, कहाँ रहेगा तेल, दीप के तले छिद्र!
हो रही सभ्यता आज घड़ा शिव–मन्दिर का,
रे, बूँद–बूँद कर, बहा जा रहा रस अपार!" [1]

इसी प्रकार 'मानव', 'कुम्भकार', 'ससार', 'सुख–दु ख', 'उदासी', 'ऑसू', 'मोती का–सा मन टूट गया', 'आनन्दानुभूति', 'विरह मिलन', 'सबका अपना, अपना मन है' शीर्षक कविताओ में सुख–दुख, हर्ष–शोक आदि कवि के वैयक्तिक न रहकर पाठक की अनुभूति से भी जुडे है।

'कला–वोध' शीर्षक खण्ड में कवि की रचना धर्मिता प्रत्यक्ष लक्षित होती है। 'घोषणा', 'गा मेरे कवि', 'मेरी कविता', 'रंगिणी', 'कहो', 'गीत–प्रदीप जलाए' आदि में कवि 'तरुण' का काव्य–संसार पूरी अर्थवत्ता में विस्तृत है।

'तरुण' 'आस्था–बोध' का कवि हैं जीवन–यात्रा के मार्ग में आने वाली विघ्न–बाधाओं के सम्मुख खडा कवि अपराजेय भाव से खडा है और इस 'अमर विश्वास' को कवि ने कई कविताओं मे व्यक्त किया है–

"यदि अस्त सूरज हो गया–
मेरा नहीं कुछ खो गया!
पथ–ज्योति देने को अभी–
तारे निकलने शेष हैं!
विश्वास है मन में अमर!" [2]

इसी प्रकार 'अपराजेय', 'उदय और अस्त', 'जब जाकर', 'है!' में इसी प्रकार का आस्थापूर्ण आत्मविश्वास झलकता है।

'प्रकृति वर्णन' में सूर्य, चॉद, तारे, पवन, ऋतुएँ, पशु–पक्षी, उषा–संध्या, मेघ, हरी घाटियॉ, चॉदनी, ऑधी, रजनी, सरिता, नदी, समुद्र, खेत–खलिहान, तितली–भॅवरे आदि प्रकृति के विभिन्न उपादानों का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। 'प्रकृति . जीवन का आधार' में कवि ने प्रकृति से एकाकार ही बॉध लिया है–

"यदि धरती पर दूब न होती, विहगों का गुंजार न होता,
हरी घाटियों में मुसकाती ऊषा का शृंगार न होता,
सावन की बौछार न होती, झरनों के कल गान न होते,
यह कोकिल की तान न होती, मधु–ऋतु का त्यौहार न होता,
तो हम जीवन–रस के प्यासे इस मरघट में कैसे जीते!
दो पल बैठ कहीं हम सुख से, यह उघड़ा उर कैसे सीते!" [3]

'पावस–श्री', 'ओस–कण', 'सरसो फूली', 'गेदा के फूल', 'वासन्ती धूप', 'चिडियॉ', 'पूनो का चॉद', 'मरु का चन्द्रोदय', 'वसन्त–प्रभात', 'गंगा–तट का स्वप्न' आदि कविताएँ प्रकृति–प्रेम को निरूपित करती है।

'धरती की गध : धूल भरे रास्ते' मे कवि का ग्राम्य–जीवन व ग्रामीण परिवेश के प्रति सहज प्रेम झलकता है। 'गॉव

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'दीप के तले छिद्र', पृष्ठ 104
2 वही, 'अमर विश्वास', पृष्ठ 163
3 वही, 'प्रकृति जीवन का आधार', पृष्ठ 169

की सॉझ', 'ग्राम वधू', 'ग्राम–विरहिणी दीप जलाती', 'खेत की ओर', 'गॉव की ओर', 'माटी के घर' शीर्षक कविताओं में धरती की गंध से सुवासित गॉव के संस्कार व परिवेश का सरस स्वाभाविक व सुन्दर चित्रण किया है।

'भक्ति : प्रणति, वन्दन–अर्चन' शीर्षक खण्ड में भजन गीत की शैली मे कवि की भावना की अभिव्यक्ति है। 'देव तुम्हारे श्री–चरणो में', 'सुख सम्पदा ले क्या करूँ', 'नयन की जोत', 'धर्म की मंगल ज्योति जले' आदि भक्ति भाव से पूर्ण रचनाएँ है।

'रहस्य, साधना और आध्यात्म' विषयक कविताएँ में आत्म–परिचय और अस्तित्व बोध से कवि की अस्मिता को किसी अनन्त सत्ता से जोडने वाली प्रतीत होती हैं। मनुष्य को जीवन में मन, वचन और कर्म के समन्वय से मुक्ति प्राप्त होती है। 'मेरा अस्तित्व', 'अभिलाषा', 'अनुभूति', 'चिन्तन', 'अमर टेक' आदि में साधना–पूर्ण पथ पर कवि अग्रसर है। कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है–

"हमें आत्म–बल दो, वसुधा पर–
जियें, मृत्यु से हो हम निर्भय,
सृष्टि–कमल से करें हृदय में
हम प्रकाश का, मधु का संचय,
आत्मामृत का पान करें हम
जड़ता के तम का हो क्षय, हे!
ज्योतिर्मय हे!" [1]

'मनोराज्य · मुक्ति के सुनहले पॉखो पर' मे कवि ने 'युग आयेगें', 'मुक्ति गान', 'मुक्ति की ओर' शीर्षक गीतों में भव बधन से मुक्त होने के भाव को व्यक्त किया है।

'प्रणय–रोमाच चहके, महक' मे कवि के हृदय की गहराइयों से निकले प्रणय गीतों की मधुर भावों में अभिव्यक्ति हुई है। 'मुख–छवि', 'हृदय समर्पण', 'मैं तो', 'तुम मेरे साथी होते तो' आदि गीतों में कवि का अपनी प्रिया के साथ व्यतीत क्षणों का मोहक अन्दाज मे वर्णन है।

जबकि 'स्मृति–रेखा · लहरदार धूम्र–पटलियॉ', मे कवि की 'प्रिय की सुधि', 'स्मृति', 'काली दीवाली', 'स्मृति का गुलाव' आदि सम्मिलित हैं। कवि उन मधुर स्मृतियो को याद कर व्यथित हो जाता है।

'आयु–चरण . शैशव और कौमार' भाग में 'शिशु के चित्र' व 'शिशु को चॉद दिखाती माता' शीर्षक गीत में बाल्यकाल का सुनहरा वर्णन है जबकि 'सरला' मे किशोरावस्था मे प्रवेश करती लडकी का वर्णन किया है। इसी प्रकार 'राष्ट्रः संस्कृति इतिहास', खण्ड में राष्ट्र–प्रेम के गीत गाये हैं। 'राष्ट्रगीत', 'स्वतन्त्रता की रजत–जयन्ती' व 'आज मिली माटी से माटी' गीतों का वर्णन है। जबकि 'मुक्तक. हरी दूब–बिखरे, लुढके ओसकण' में कवि ने नया प्रयोग किया है।

ग्रन्थावली के 'उतर खण्ड' को तीन भागों क्रमशः 'सौधे ऑगन : पॉव की छापे', 'दुपहरिया के फूल', 'पहाडी सांध्य रागिनी' में विभाजित हैं। 'तरुण' की 1930 से 1988 तक की अप्रकाशित रचनाएँ इनमें क्रमवार रचित है।

डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार– ***'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' की कविताओं को पढ़कर पाठक के मन में आधुनिक युग के संत्रास, पीड़ा और वेदना का ही बोध नहीं होगा, वरन मानवता के प्रति प्रेम, मानवीय शाश्वत मूल्यों के प्रति निष्ठा, सांस्कृतिक विरासत के प्रति आस्था के उदात्त भाव भी जागृत होंगे।'*** [58]

---

1 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'वन्दना', पृष्ठ 270

'ग्रन्थावली' के विमोचन–समारोह के अवसर पर भारत के तत्कालीन उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ0 शंकर दयाल शर्मा द्वारा दिए गए वक्तव्य के अनुसार– *"आज हमें आदर्श और क्रांति–जीवन में दोनों की आवश्यकता है। दोनों ही हमें सौन्दर्य की ओर ले जाते हैं। साथ ही बोलियों की मिट्टी से भी हमें जुड़ना है। क्योंकि वह हमें जीवन के बड़े से बड़े थपेड़ों को बर्दाश्त करने की शक्ति देती है। यह शक्ति ही हमारी संस्कृति की बहुत बड़ी वाहक है। यही हमारी संस्कृति की सोच है।*

कवि 'तरुण' जीवन के बड़े से बड़े थपेड़ों को झेलते हुए आगे बढ़ते जायें और कविता को जन–जन तक पहुँचावें, यही कामना है।" [59]

डॉ0 शम्भुनाथ सिह का मन्तव्य है, *" बहुमूल्य ग्रंथ 'तरुण'–काव्य का अध्ययन करने के लिए अपरिहार्य। हिन्दी साहित्य के इतिहास में उन्हें भुलाया नहीं जा सकता।"* [60]

डॉ0 शक्तिदान कविया अपने हृदय के उद्‌गार को व्यक्त करते हुए कहते हैं– *" इस महान ग्रंथ को देखकर गद्‌गद् हो गया। आप जैसे यशस्वी एवं मूर्धन्य महामनीषी इस देश में अब विरले ही दीखते हैं। राजस्थान की धरती धन्य है जिसने ऐसे विद्वद्‌रत्न एवं महाकवि को जन्म दिया।"* [61]

डॉ0 रामकुमार शर्मा 'ग्रन्थावली' के सन्दर्भ में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहते हैं–*"छायावाद एवं छायावादोत्तर हिन्दी–काव्य का रेशा–रेशा समझने के लिए 'ग्रंथावली' एक अत्यन्त प्रमाणिक सर्जनात्मक दस्तावेज है। यह एक बेजोड़ एवं विलक्षण काव्य कृति है।"* [62]

'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' 'तरुण' के समग्र काव्य का लेखा–जोखा है जो काव्य प्रेमियों को आनन्दित व आह्लादित करता रहेगा व 'तरुण' काव्य के प्रेमी–सुधी–जन इस काव्य को पढ अपनी प्यास बुझा सकेगे।

खूनी पुल पर से गुजरते हुए

'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' सग्रह में महाकवि 'तरुण' के तीखे (तल्ख) तेवर और अनूठे अंदाज की चुनी हुई कविताएँ हैं, जो सन् 1991 मे प्रकाशित हुई है। उसके पश्चात् भी इस मनस्वी रचनाकार की लेखनी से सत्य–साक्ष्य अनुभवों के चारू चित्र निरन्तर अकित हो रहे है। भावो के अनुरूप भाषा और हृदयग्राही बिम्ब–विधान की जो नूतनता और ताजगी डॉ0 'तरुण' के कारण में दृष्टिगोचर होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। रचना चाहे गीत हो, मुक्तक हो अथवा मुक्त छन्द, स्वाभाविकता एवं सरसता का गुण सब में भरपूर झलकता है।

'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' की सन् 1930 से सन् 1990 तक की काव्य–यात्रा मे से चुनी हुई 100 कविताओ का संकलन है। इस काव्य–संग्रह के बारे मे डॉ0 प्रकाश मनु जिन्होंने इस पुस्तक का सम्पादन किया का मत है– ***"साफ कहूँ तो तरुण जी की पूरी काव्य–यात्रा में पिछले दो–ढाई दशकों की रचनाएँ मुझे खास तौर से महत्त्वपूर्ण लगी हैं। उनकी समय में देर तक टिकने वाली रचनाएँ यही हैं। बहुत–सी जगहों पर वह खुद अपने पूर्ण–विश्वास और आस्थाओं का विश्लेषण करते नजर आते हैं। बहुत–कुछ छोड़ते हैं, नकारते हैं। हालांकि इस छोड़ने, ग्रहण करने की प्रक्रिया में भी बहुत–कुछ ऐसा है– खासकर जीवन का रुमानी आवेग जो अन्त तक उनके साथ रहता है। उनकी रचनाओं को समकालीन कविता के दौर में भी, जब ज्यादातर कवि एक–सी रचनाएँ लिख रहे हैं, एक अलग शख्सियत प्रदान करता है– बल्कि वही उनके कवि रूप को इतना आकर्षक और पुख्ता बनाता है।"*** [63]

डॉ0 सुमित्रानन्दन पंत के अनुसार, ***"प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण करने तथा नैसर्गिक वातावरण की अवधारणा करने में कवि को अत्यन्त सफलता मिली है।"*** [64]

डॉ0 भवानीप्रसाद मिश्र के उद्‌गार भी दृष्टव्य है– ***"कविता में प्रतिक्षण बदलते हुए परिवेशों में अपनी एक तस्वीर आँक देना साधारण बात नहीं है। 'तरुण' ने इसी असाधारण को साधा है।"*** [65]

'अचल' कहते हैं, ***"स्वच्छन्दता का ऐसा मादक और ताजगी से पूर्ण वातावरण का सर्जन आप करते हैं कि हिन्दी के प्रत्येक कवि से दूर आप अलग दिखाई देते हैं।"*** [66]

कविवर 'तरुण' ने एक शलाका पुरुष, क्रान्तिकारी कवि की तरह इस प्रकार की ध्वंसात्मक एवं सम्पूर्ण क्रान्ति की अभिव्यक्ति करते हुए अत्यन्त निर्भयता और साहस के साथ अपनी काव्य–यात्रा को अनवरत जारी रखा है। इसमें अभिव्यक्ति के गम्भीर खतरे हो सकते थे, किन्तु कविवर 'तरुण' ने उनकी तनिक भी परवाह किए बिना अपनी राष्ट्र–प्रेम की भावना को किसी भय अथवा लोभ से नपुंसक नहीं होने दिया। कदाचित् राष्ट्र–प्रेम की शुद्ध भावना के कारण ही कवि ने ऐसे खतरे उठाये हैं जिनके प्रति वह अनभिज्ञ नहीं है।

'भली–भाँति जानता हूँ' कविता में अभिव्यक्ति के खतरों के प्रति कवि की सजगता का आभास मिलता है कि प्रजातन्त्र और वाणी–स्वातन्त्र्य के इस युग में भी उसकी बात भून दी जायेगी, उसकी आवाज का कबाब बना दिया जायेगा। इतना ही नही, उठते हुए हाथों के जगल मे आततायी की ओर उठी उसकी उंगली खड़ाक से बन्दूक की नाल द्वारा उडा दी जायेगी और जनता की छाती पर कुतुबमीनार–से खडे, सावन–भादो की बिजलियो तक को डकार जाने वाले भूकम्प–प्रूफ, खानदानी, नकद देश–सेवक उस पर अरडाकर झपटते हुए टूट पडेगें कि यह 'आऊटसाइडर' उनके बाडे मे कौन आ गया है? कहाँ से आ गया है?–

"जानता हूँ–भली–भाँति जानता हूँ मैं–
कि इस प्रजातंत्र में–वाणी–स्वातंत्र्य के इस युग में
मेरी बात भून दी जायगी,
मेरी आवाज़ का कबाब बना दिया जायगा–
उठते हुए हाथों के जंगल में।" [1]

'राजनीति की सॉभर झील' शीर्षक कविता मे कवि को देश की राजनीति, सॉभर झील की भॉति दिखाई देती है जो बहुत लम्बी–चौडी और गहरी है। इसमें आकांक्षा, प्रतीति, सम्बन्ध, मुस्कान, कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति कुछ भी डाल दो–सब कुछ गल–सडकर नष्ट हो जाता है और रह जाती है–केवल राजनीति–

"आकांक्षा, सम्बन्ध, मुस्कान, प्रतीति,
कला, सौन्दर्य, साधना, जीवन–मूल्य, प्रीति–
कुछ भी डालो, सब कुछ उसमें गल–सड़कर हो जाता है–
राजनीति, राजनीति, राजनीति!" [2]

'हथौडा चाहिये तोडी चट्टान को' शीर्षक गीत मे भी वर्तमान व्यवस्था के प्रति कवि का आक्रोश व्यजित हुआ है। इस व्यवस्था की जड–चट्टान को तोडने के लिए इसे डायनामाइट से काट कर उडाना होगा अथवा लाख–लाख हॉर्स–पॉवर का ट्रेक्टर चलाना होगा क्योंकि यह चीन की दीवार जैसी मोटी और लम्बी है जिसे क्रान्ति की बरछी की तेज किरणो से गलाकर ही काटा जा सकता है–

"हो चुकी है सौ सुनार की,
अब तो होगी एक लुहार की।
लोहे का एक भारी हथौड़ा
बस अब हाथ में आना है!" [3]

'खून–सना वट–बीज' नामक कविता में माध्यम से सडक पर रिक्शा चलाने वाले के भीतर अन्तर्मन में अंकुरित हो रहे भावी खूनी क्रान्ति के वीज स्पष्ट रूप से दिख रहे है। दलित–शोषित–वर्ग द्वारा भावी क्रान्ति को कवि स्पष्ट देख रहा है–

"दाढ़ी के जंगलात में छिपे से हों जैसे कुछ मानवी सरोकार, गहरे वादे।
जिसमें जैसे कोई शऊर नहीं, उसमें छिपे हैं–
युगान्तरी सांस्कृतिक इरादे!
खून में कुछ हरारत–सी
आँखों में कुछ शरारत–सी
नापाक मनुष्यता पर–
जैसे, बुलाता–सा कुछ शामत–सी!
तवे–सी लू–गरमी में देखता–सा निकल जाता
एक बगीचानुमा कोठी, गैराज,
आँखें आगाह–सी जैसे कर जाती हों–

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'भली–भॉति जानता हूँ', पृष्ठ 72
2. वही, 'राजनीति की सॉभर झील', पृष्ठ 73
3 वही, 'हथौडा चाहिए तोडो चट्टान को', पृष्ठ 74

सावधान, गिरेगी गाज।
भवन गिरेंगे–धड़ाम, धड़ाम,
चारों ओर होगी–'हाय,राम।'
लगती थी मुझे रिक्शे वाले की पसीना–सनी कमीज–
जैसे, भावी काले–मटियाले तूफ़ान का हो एक खून–सना वट–बीज!" [1]

'प्रश्नाकूल हूँ' शीर्षक कविता में कवि ने एक अत्यन्त मौलिक प्रश्न उठाया है विराट और उदात, जीवन के प्रेरक, पोषक, प्राण–सहजात तत्त्व–रसवन्ती पृथ्वी, मधुर जल, निर्मल वातास, तेजोमयी आगन, आनन्दमय आकाश– क्या ये सब उसके शरीर में स्वेच्छा से ही विहार कर रहे हैं? अथवा उन्हें जबरदस्ती उसके भीतर ठूंसा गया है। यदि उसे जबरदस्ती का जीवन दिया गया तो उसे धिक्कार है क्योंकि यह उसके आत्मस्वातन्त्र्यजीवी होने के मानवीय–गौरव का प्रश्न है–

"कोई भी अपवाद, पक्षपात, व्यर्थ एहसान का न हो प्रयत्न–
क्योंकि यह मेरी अस्मिता, मेरे अस्तित्व
और मेरे आत्मस्वातन्त्र्यजीवी होने के
मानवीय गौरव का है प्रश्न!" [2]

नव–निर्माण का उद्घोष करते कवि प्राचीन जर्जर मान्यताओं को समूल नष्ट करना चाहता है बहुरूपिये, पेटू, उच्चपदासीन, बगुलो की पॉख–से सफेदपोशों के चक्रव्यूह को तोड़ना है। आज उन्हे ऐसे ही ताजा अभिमन्यु की तलाश है–

"मुक्त करे भोले व्यक्ति को, मुक्त करे जो पीड़ित समाज,
तोड़े, भेदे आज के चक्रव्यूह को जो जाँ–बाज़–
मैं तो उसी को कहूँगा ताज़ा अभिमन्यु आज!" [3]

'अपनी राम मडैया' जैसी रचना मे कवि समाज के परम्परा को उजागर करती है, साथ ही विश्व बंधुत्व की भावना और शोषण का प्रतिकार करती भी प्रतीत होती है। यह कवि की संघर्ष चेतना को प्रतिबिम्बित करती है। यहॉ निराशा नहीं बल्कि कवि का अपनी शक्ति तथा अपने देशवासियों की अतुल शक्ति पर पूर्ण विश्वास है–

"ठंडी होवे नहीं फकीरों! अपनी चिलम–तमाकू,
बड़े–बड़े भवनों से हमको होड़ करन है काकूँ?
टूटी खटिया भली, न काटे कोई बर्र–ततैया।
बनी रहे यह घास–फूस की राम मड़ैया।" [4]

'तरुण' की प्रथम कविता 'पीपल मे जल' सन् 1930 मे लिखी गई थी जो प्रकृति से प्रारम्भ होती है। गणगौर के दिन राजा जी की रानी अपनी सहेलियों के साथ हॅसते गाते पीपल मे जल देने जाती है– यह कवि–हृदय में प्रकृति के प्रति पूजा और वन्दना के भावों को रेखाकित करता है–

"राजाजी की रानी चली, पीपली के नीचे,
वहाँ रानी जाकर क्या करे कि पीपल में जल सींचे।
दिन था वह गणगौर का चली चहेली साथ।

---
1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'खून–सना वट–बीज', पृष्ठ 27
2 वही, 'प्रश्नाकूल हूँ', पृष्ठ 132
3 वही, 'एक ताजा अभिमन्यु', पृष्ठ 71
4 वही, 'अपनी राम मडैया', पृष्ठ 84

हँसती गाती जा रही, जल की मटकी हाथ।" [1]

'चॉद और चॉदनी' शीर्षक कविता में आकाश, तारे, चॉद और चॉदनी की धवलिमा के द्वारा देशक की ससद और उसकी कार्य–प्रणाली पर तीखा व्यंग्य किया है।

स्वर्ग के देवो का गुणगान न करने का संदेश देते हुए कवि मानव के गौरव के प्रश्न पर ईश्वर से टकराने का भी साहस अपने अन्दर रखता है–

"आज मैं ईश्वर से झगड़ आया।
सोने के सिंहासन पर सुखासन मैं पौढ़ै थे देव,
और, धुप में नंगे पाँव चलने की अपनी तो टेव।
मैंने तो बस इतना ही कहा था कि–
आजकल सृष्टि का कार्य–कलाप ठीक नहीं चल रहा है माई–बाप!
चर्चा गरम है–
सत्ता और अमीरी की बड़ी तरफ़दारी कर रहे हैं आप।" [2]

कवि ने अपने जीवन में भय, संशय और संत्रास को कम नही भोगा है, परन्तु इस 'ॲधेरे से अँधेरे की यात्रा' में उसने अजेय विश्वास और दृढ संकल्प को कभी नही छोडा। जीवन को 'तरुण' ने पूरी तन्मयता के साथ जिया है। उसने जीवन के सभी कडवे–मीठे, खारे–कसैले, तरल–गाढा, ॲधेरा–उजाला सभी पक्षो को पूरी समग्रता के साथ स्वीकार किया है। जीवन के प्रति ऐसी प्रबल प्रतिबद्धता 'निराला' जैसे इने–गीने कवियो में ही देखने को मिलती है–

"जीवन का मीठा–खरा, कड़वा–कसैला
तरल–गाढ़ा, अँधेरा–उजेला–
आँखें खोले, मौन रह,
कंठ भींच, पैंदे तक पिया!" [3]

'तरुण' अनुभव करते है कि उसके हृदय पर से कई बार प्रलय–रथ के पहिये निकल चुके हैं। जिस विधाता ने 'पीने को विष की प्याली' तथा 'कॉटो वाली पगडण्डी चलने को' दी है उसकी भी कवि जयजयकार करता है। इस समत्व के साधक कवि को जीवन से कभी कोई गिला–शिकवा कैसे हो सकता है? वह तो जीवन को सारी वंचनाओ और विडम्बनाओं के साथ समग्रत स्वीकार करता है–

"कभी तो मैं बवण्डर–सा उठा,
कभी बिजली–सा गिरा।
कभी धनिये–करौंदों की बाड़ी से
हवा के झोंके–सा हो निकला!" [4]

कवि ने जीवन के उच्चतर मूल्यों और मानवता में, सामाजिक न्याय–भावना में, राष्ट्रीय आत्मैक्य में और फिर जीवन के कोमल–पक्षो में उसे आधुनिक युग की विध्वसकारी शक्तियो से ऊपर उठाया है। आज 'तरुण' अपने आप को धरती की ओस–जडित

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'पीपल मे जल', पृष्ठ 89
2 वही, 'मै झगड आया', पृष्ठ 121
3 वही, 'मै कसकर जिया', पृष्ठ 117
4 वही, 'सिलसिला', पृष्ठ 116

हरियाली, आदमी के सलोने सपने व खुशहाली सभी के प्रति खुद को प्रतिश्रुत मानता है–

"मैं प्रतिश्रुत हूँ–
अपने रक्त की लाली के प्रति,
उषा की सरस गुलाली के प्रति,
धरती की ओस–जड़ी हरियाली के प्रति!
आदमी के सलोने सपने और खुशहाली के प्रति–
मैं प्रतिश्रुत हूँ!" [1]

कवि 'तरुण' सत्ता–व्यवस्था के दो–मुँहे खेल मे खुद अपनी सन्त्रस्त हालत का बयान बडे कारुणिक ढग से करते है। कवि को लगता है कि आज कीडे–मकौडे तक उसके अस्तित्व की खिल्ली उड़ाते से लग रहे हैं। उसके चारो तरफ एक बर्फ की मोटी सिल्ली जम गई है जिसमें पिन चुभाओगें तो भी उसका कुछ नहीं बिगडेगा। हर चीज उन्हें लुढकी, विकृत और औंधी नजर आ रही है। और वे खुद नही समझ पा रहे है कि वे क्या है–

"जापानी खिलौने–सा–चाबी से चलता हूँ!
हर चीज़ अब मुझे लगती है–लुढ़की, विकृत, औंधी–
मुझे जाने कैसी–सी हो गई है–
चेतना की चुप्पी, मन का अँधेरा–घुप्प, या आत्मा की रतौंधी!" [2]

'तरुण' कहते हैं कि व्यवस्था की यह स्थिति इतनी आसानी से नही बदलेगी। हमें उसे देखने की आदत डाल देनी चाहिये। ऑख बन्द कर देने से कठोर यथार्थ की छायाऍं नही मिटेगी। फिर भी अगर देखा नहीं जाता तो उन्होंने एक विनम्र सलाह दी है। परन्तु इस सलाह को सलाह न मानिये ये भी 'तरुण' के व्यंग्य करने का एक तरीका है–

"माकूल इलाज करवाओ–ब्रेन में करैंट लगवाओ–
या काले नाग से अपने को डसवाओ।
राजघाट या कसौली घूम आओ,
शायद अपनी अमर–अनंत आत्म–पीड़ा से थोड़ी–बहुत राहत पाओ!" [3]

इस पुस्तक या काव्य संकलन की अधिकांश रचनाऍं, जैसे– 'आत्मकथा', 'आज, मेरी नजर', 'गिरवी', 'आज, मेरी सॉस', 'सकीना का लोटा', 'राशन–कार्ड के साथ वापस', 'हम शिल्पी सत्रास के', 'नव आदमी', 'बैठू मै–किस मुद्रा में?', 'शोक समाचार', 'यस सर', 'दल बदलू', 'चोचों का खेल', 'एडमिनिस्ट्रेशन', 'एकेडेमिक', 'मेरी ऑखें', 'डमोक्रेसी', 'कलई', 'देते है', 'यह आदमी', 'कोकीन का इंजेक्शन', 'सास्कृतिक योगदान', 'खूनी पुल पर से होकर', 'अभियोग–पत्र', 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', 'अस्वीकार', 'हिमाचला', 'सरला', 'मैं बनवासी होता', 'पहले इनकी सुन लो', 'बादरे', 'घोषणा', 'एक न एक दिन' आदि अनेक रचनाऍं क्रमश 'हिमांचला', 'ऑधी और चॉदनी', 'हम शिल्पी संत्रास' नामक काव्य संग्रहों मे प्रकाशित हो चुकी हैं व जिनके विषय मे पूर्व अध्यायों में विस्तृत वर्णन कर दिया है।

---

1 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' 'प्रतिश्रुत हूँ', पृष्ठ 117
2 वही, 'सन्नाटा', पृष्ठ 64
3 वही, 'देखा नही जाता तो', पृष्ठ 57

'चल पड़े हम तो'

डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' की 'चल पडे हम तो' सन् 1991 में अमित कान्ति प्रकाशन से प्रकाशित युवकों के लिए संकलित ज्योति–गीत हैं। 'देश के झलमलाते युवक और युवतियाँ प्रकाश की किरणें चूमते चांदी–से चमकते सुदूर गिरि–शिखरो की ओर बढ चले' 'युवा–कण्ठों पर और मधुर संगीत की मंजुल लहरियों मे पहुँच कर' ये गीत अपनी वास्तविक कांति–किरणें बिखरायेंगें– इसी विश्वास से कवि ने इस छोटी–सी पुस्तिका की रचना की।

'प्रस्थान की घडी आई', 'जवानी है, जवानी हैं', 'जवानी आ गई मेरी', 'मॉझी, साहस छोड न देना', 'निर्माण कर', 'लौह पुरुष, तू रोता क्यों है?', 'अमर विश्वास', 'अन्तर्ज्वाल', 'ओ चट्टान से मल्लाह', 'आकाश का निमन्त्रण', 'गाता चल तू गीत', 'पछी! पिजरे के तोड द्वार', 'बटोही, ठण्डी सॉस न ले' आदि इक्कीस उद्‌बोधन गीत है।

'तरुण' को युवाओ की अपराजेय शक्ति पर विश्वास है। यौवन के अल्हड़पन से दीप्तमान युवक कवि की आशा का प्रतीक है। देश का युवा–वर्ग आत्म–विस्मृति का शिकार हो दिग्भ्रमित हो रहा है। नेतृत्व प्रायः पद–लोलुप है, बुद्धिजीवी या तो पुस्तकीय वाद–विवाद करते दिखाई पड रहे है या आत्मरति में लिप्त है, भौतिकवाद और विज्ञान के बेहिसाब प्रसार ने युवावर्ग में अतृप्ति की प्यास को जन्म दे डाला है। ऐसे समय में कविवर 'तरुण' के ये गीत युवा–वर्ग के लिए जीवन–दायिनी संजीवनी प्रमाणित हो सकते हैं और उनमें नवचेतना ऊर्जा एव विश्वास को पुन जागृत कर सकते है।

'तारे, ओसकण और चिनगारियाँ'

'तारे, ओसकण और चिनगारियॉ' पुस्तक नही है, बल्कि एक छोटी–सी पुस्तिका है जिसमें रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' के काव्य से कुछ चुने हुए मुक्तक हैं अंश है जो 1993 में प्रकाशित हुई, इसे डॉ0 जगदीश चन्द्र सिंघल ने सपादित किया है। इस पुस्तिका के बारे मे इतना ही कह सकते हैं 'तरुण' काव्य के गीतों, कविताओं व मुक्तको में से जो अश सपादक व 'तरुण' को महत्त्वपूर्ण लगे उनको प्रकाशित किया गया है।

'किरणें और तरंगें' भाग में 'बटोही, ठण्डी सॉस न ले', 'उपचार', 'पंछी, पिंजरे के तोड द्वारा', 'निर्माण कर', 'अमर विश्वास', 'गाता चल तू गीत', 'लौह पुरुष! तू रोता क्यों हैं?' आदि गीतों की चार–चार या छह–छह पंक्तियॉ हैं।

इसी प्रकार 'जिजीविषा, जीवन–संघर्ष और क्रान्ति' शीर्षक भाग में 'अँधेरा', 'जवानी आ गई मेरी', 'मैं कस कर जिया', 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', 'खून–सना वट–बीज', 'युग आयेंगे', 'मै झगड आया', 'एक ताजा अभिमन्यु' आदि ओजस्वी रचनाओ की पक्तियॉ संग्रहीत है।

'रूप, यौवन, सौन्दर्य, अन्तर्पीडा' शीर्षक भाग में 'कितनी मधुर वह रात थी', 'सांझ के बाद', 'अपनी कहो कहानी', 'फूल खिले बेला के', 'हम–तुम कहीं चल दें!', 'चॉद से हौले–हौले चलो', 'मधु–भार', 'वह कथा सुन क्या करोगें' आदि गीतों के अंशों को लिया गया है।

अन्त में 'प्रकृति, ग्राम, राष्ट्र, कला, संस्कृति, साधना और जीवन चैतन्य' शीर्षक के अन्तर्गत 'मेरे गीत मौन मत होना', 'सर्जन क्षण में', 'क्या उपहार तुम्हे दू रानी', 'सावन', 'मेरी कविता', 'ग्राम–विरहिणी दीप जलाती', 'खोज', 'प्रतिश्रुत हूँ', 'चिडियॉ', 'चोचों का खेल', 'मै बनवासी होता', 'दीप तले छिद्र', 'हम शिल्पी सत्रास के', 'राजनीति की सॉभर झील' और 'उदय और अस्त' आदि रचनाओं के काव्याश है।

ये सभी काव्यांश 'तरुण' की 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' से उद्धृत हैं।

यह लो मेरे हस्ताक्षर

'यह लो मेरे हस्ताक्षर' काव्य संग्रह सन् अगस्त 1995 में प्रकाशित हुआ। इस काव्य संग्रह में अधिकांशत. 1989 से 1995 तक की कविताएँ सकलित हुई है। ये कविताएँ तरुण की प्रोढि की कविताएँ हैं। व्यक्तिगत जीवन की डोर थामे हुए भी इन रचनाओं का फैलाव अपने मे बाहरी दुनिया के विस्तार को समेटता चलता है। इन कविताओं मे कवि की अपनी छवि, अपनी जीवन्तता, अपनी शक्ति और अपनी रणोद्यतता को उजागर किया है।

डॉ0 शिवकुमार मिश्र जिन्होंने 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' की 'भूमिका' लिखी है, का मन्तव्य है–*"उम्र के आठवें दशक में अपने पैर रोपे 'तरुण' उपनाम से कविता लिखने और रचने वाले रामेश्वर लाल खण्डेलवाल, मेरी निगाह में ऐसे ही समकालीन रचनाकारों में एक हैं, जिनके लिए वर्तमान माहौल में कविता को जिलाए और बचाए रखने की कोशिश आदमीयत को जिलाए और बचाए रखने की कोशिश से कमतर महत्व की नहीं है।*

समय की बदरंग होती हुई शक्ल पर परेशानी, चिंता, खीझ और आक्रोश और उस बदरंग करने वाली ताकतों से दो–दो हाथ कर लेने की आकांक्षा, आदमी के चेहरे पर, और समय के चेहरे पर फिर से चमक लाने की बेकरारी, बैचेनी और कशिश, जो कुछ भी मानवीय है, सहज है और सुन्दर है, उसे किसी भी तरह बचा पाने की कोशिश, भले ही उसके लिए कितना और कैसा भी जोखिम क्यों न उठाना पड़े, 'तरुण' की इन रचनाओं को सृजन के उन सकारात्मक बिन्दुओं से जोड़ती है, जहाँ सृजन अपने को चरितार्थ करता है।....

...रचनाएँ कहीं भी अपनी मानवीय अर्थवता से विन्छिन्न नहीं हुई हैं बेहतर दुनिया, बेहतर मनुष्य और बेहतर मनुष्यता का रचनाकार का सपना और संकल्प सदा ही उनके साथ अविच्छिन्न रूप से गुँथे हुए हैं।

तरुण के रचनाकार का यह संकल्प और नजरिया ही उसे समकालीनता के सही आशय और परिप्रेक्ष्य से जोड़ता है।" [67]

डॉ0 आनन्द प्रकाश दीक्षित ने 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' काव्य–सग्रह के जीवन्त कवि 'तरुण' के बारे मे अपने विचार व्यक्त किए हैं–*'तरुण' की इन कविताओं का ठाठ कबीरी है। वैसी ही अनुभूति की सत्यता, वैसा ही व्यापक जीवनानुभव, वैसा ही जीवन की चुनौतियों को स्वीकार और वैसा ही शब्दों का बेधड़क प्रयोग। भाषा का कोई परहेज नहीं– एकदम सेक्यूलर। रूपक कबीर की तरह ही दैनिक कर्ममय जीवन से उठाये हुए– कभी बुनकर, कभी सिकलीगर, कभी बनिया, कभी धुनिया और कभी राज–मजदूर। लेकिन आध्यात्म, दर्शन और उपदेश की उनके यहाँ कोई गम नहीं। इस धरती के प्रति पूरा लगाव, लेकिन अन्दाज ऐसा कि जब चाहें छोड़ दें।"* [68]

डॉ0 मालनी ने 'तरुण' के काव्य मे निहित वर्तमान की निर्भीक मीमॉसा पर अपने विचार व्यक्त किए है– *"यह लो मेरे हस्ताक्षर' कविता–संग्रह मात्र कवित्व नहीं है, यह कविता के साथ 'तमोमयी सत्ता और व्यवस्था' की ध्वंस करने की हस्ताक्षरित उद्घोषणा हैं। 'तरुण' का यह जीवन्त मुक्त गीत है। जिसमें वर्तमान की निर्भीक मीमाँसा है और है भविष्य का आशातीत काव्य–संग्रह का अनुभूति–फलक व्यापक और वैविध्यपूर्ण है और कवि की निश्छल आत्मीयता इस फलक का नियामक तत्त्व है।"* [69]

डॉ0 शिव कुमार मिश्र के अनुसार– *"'तरुण' की ये रचनाएँ परिपक्व, सीझी हुई रचनाएँ हैं। ये रोशनी का रचनाएँ हैं, अंधकार के खिलाफ लड़े जा रहे युद्ध की रचनाएँ है, जीवन के प्रति आसक्ति और राग की रचनाएँ हैं, आस्था और विश्वास की रचनाएँ हैं। ये मनुष्य के पक्ष में, मनुष्य के पक्ष से लिखी गई रचनाएँ हैं।"* [70]

'यह लो मेरे हस्ताक्षर' काव्य–संग्रह में नवे दशक के प्रथम पांच वर्षों की 97 काव्यानुभूतियॉ संग्रहीत है। विषय की दृष्टि से 'समय और मैं' और 'मेरी मौत'– अर्थात्, संग्रह की प्रथम कविता से अन्तिम कविता तक की कविताओ मे एक संघर्ष, तनाव, भाव की छोटी–बडी कडवी सच्चाइयॉ, खीझ, आक्रोश, व्याकुलता, अकुलाहट के साथ जीवन के सकारात्मक मूल्यों को उनकी सही पहचान प्रदान करने की प्रबल उत्कट कामना उमड–उमड पडी है। कवि की आत्मिक यात्रा का समूचा भाव इन कविताओं मे सिमट आया है।

'अभी भी', 'क्या पता', 'फूलों की झोली', 'धूप का टुकड़ा', 'थूहर वाली रूपवती' जैसी कविताओं में एक झीना–झीना, भीना–भीना रहस्यवादी काव्य का–सा रूमानी सौन्दर्य–बोध है, इन मे रागात्मक आत्मीयता का रस है। रूहानी रोमानी, रोमांचक, आकर्षण की बानगी देखते ही बनती है–

"रात की निस्तब्ध शान्ति में, शरबती चाँदनी में
घने कांटेदार जहरीले थूहरों की बाड़ में से
झाँक रही तुम, कौन?–" [1]

'कुछ तो उपजेंगे' कविता मे कवि की जीवन्मुक्त आशा भारतीय चिन्तन आत्मवाद की स्वीकृति है। 'प्रज्ञा का झलमलाता आलोक' जो कवि–अस्तित्व से फूटता रहा वह नश्वर नही है। हॉ, भविष्य के आशावाद में कवि का यथार्थ एवं सत्य के प्रति एक पार्थिक चिन्तन विद्यमान है जो कवि को यथार्थवादी भी बनाता है–

"मुझे यह भी जान पड़ा, जैसे मेरे जाने के बाद
इस विशाल जनाकीर्ण संसार में
मेरी रोड़ी पर उग आयेंगें– कुछ तो उपजेगें ही–
शायद कुछ जंगली फूल, घास पत्ते
इधर–उधर कुछ कुकरमुत्ते।
अँधेरे में बोलेगें कुछ सियार, भूंकते भी होगें कुत्ते" [2]

जीवन और मृत्यु तथा उसके बाद की गहराइयो के प्रति कवि की जीवन–दृष्टि आशावादी रही है। 'ओठ, कण्ठ की प्यास' जैसी कतिपय कविताएॅ थकन से भी है। तो 'लकीर खींचने ही नही देता' कविता में कर्मशील मन का मार्मिक क्षोभ विद्यमान है–

"ऐसे फूत्कारी प्रवाह पर–
कौन से स्वर्ण–कलश टाँक सकेगें
कीर्ति–यश के कौन से विजय–चिह्न आँक सकेंगे–
गाड़ सकेंगे कौन से झंडे अपने?
बेचारे सम्राट–लूले, लँगड़े, अदने!" [3]

'मनमाफिक मकान' का भाव ईषत् निराशा लिए हुए है। कविता में फैली हुई 'माचिस की खाली डिबिया, अधजली

---

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'थूहर वाली रूपवती', पृष्ठ 85
2 वही, 'कुछ तो उपजेगे', पृष्ठ 58
3 वही, 'लकीर खीचने ही नही देता', पृष्ठ 10

तीलियाँ, झड़े–छितरे पंछियो के पख, जंग खाए मुडे–तुडे तार, उडी–तुडी कपडे की कतरनें आदि आदि से बनने वाले मनमाफिक मकान का 'पूरी कश्मीरी घाटी होगा जिसका जगला' समूचे प्रसंग को एक गूढ–गंभीर अर्थ प्रदान करता है और फिर कविता का अन्तिम पडाव इस आत्मीयता से भरे मकान को राजनीतिक परिप्रेक्ष्य से जोड देता है–

"पर, यहाँ तो धुंध ही धुंध है चारों ओर
अँधेरे में, सामने गरजती लहरों का रोर
आँधियों के झपट्टों का है शोर
अतलान्त खूनी समुद्र का फैलाव
अ–छोर!" [1]

'हॉसी आवे' कविता मे कवि इस लघुमानवता बोध से ऊपर उठ चुका है। वह 'आत्मजागरण' की प्रक्रिया से गुजर रहा है जहॉ से सत्य का प्रत्यक्षीकरण प्रारम्भ हो चुका है–

"क्या कोई रोग लग गया है मुझे–आमरण?
या, मेरे भीतर की घोर घटाओं का हो गया है
नग्न रूपान्तरण?
या, लग गया है मुझे आत्म–जागरण!
बात मुद्दे की तो बस इतनी ही है बिरादर
कि मुझे तो आज हँसी आवे!" [2]

इसी प्रकार 'इत्ता–इत्ता' कविता का "रसाली अदना माटी की ही काया" वाली मानवीय काया में तेज की चिनगारियॉ फूट पडी है। आधुनिक नई कविता वाला लघु मानव रहस्यवादी दार्शनिकता से सवलित कवि की अनुभूति की समृद्ध चेतना को उजागर करता है–

"तेज चिनगारियाँ ऐसी छूटी मुझमें–
अधजले पत्थर के कोयलों से
चिनगारियाँ फूटी हो जैसे तड़तड़ा कर।" [3]

'तरुण' की कुछ कविताऍ समप्टि चिन्तन वाली है। इनमें प्रशासन, व्यवस्था, सत्ता मे समाये तेजाब की दाहक ज्वाला है। इस 'तमोमयी सत्ता' से मुक्त होने की दमदम करती युवा आग है–

"उत्ताप फैला है चारों ओर जीवन–क्रान्ति गीत गाता,
पलकों, रोमछिद्रों, काया को कँपाता–गरमाता।
ठोस लोहा कूटने की आवाजें दनादन
कानों को पहुँचा रही हैं जीवन–क्रान्ति–गीत की झनाझन।" [4]

'देखोगे? देखना चाहोगे?' कविता मे "विश्वविद्यालयो के युवको के न्यायोचित सात्विक आक्रोश–विद्रोह को देखकर" कवि की क्रान्ति चेतना उन्हे दिशा–निर्देश देने के लिए विवश हो जाती है–

"धज्जी, धज्जी उड़ाने को

---

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'मन माफिक मकान', पृष्ठ 22
2 वही, 'हॉसी आवे', पृष्ठ 32
3 वही, 'इत्ता–इत्ता', पृष्ठ 26
4 वही, 'शब्द बन रहा है–क्रान्ति गीत का', पृष्ठ 91

ज़ुल्म और अत्याचार के थान के थान
निकल ही पड़े हो जो तुम
हरहराती तगड़ी समुद्री लहरों के समान–
करने को समूल नव–निर्माण–
शाबाश! करते हुए तमस का पूरा पर्दाफाश।
अँधेरा फाड़कर पृथ्वी पर लाने को
मनुष्यता का नया प्रभात–
तो लाडलों, यह बहत्तर वर्षीय 'तरुण' भी तो है तुम्हारे साथ।" [1]

यह विराट कोई अलौकिक शक्ति नही है, यहीं इसी लोक में चराचर सृष्टि के बीच मनुष्य का प्राप्तव्य है– कभी आत्मदान करके और कभी स्वानुभव से किए गये आत्म–साक्षात्कार के द्वारा। अलौकिक, अप्रमेय और अनन्त की मृगतृष्णा में न भटककर जिस दिन मनुष्य कवि के स्वरों मे मिला कर गा उठेगा। 'रास आ गई' कविता में हिंसक–मलिन परिवेश वाली ही सही, जिन्दगी के प्रति अनुराग व्यक्त है–

"जो कुछ कहो, हमें तो यह जमीं, यह जिन्दगी रास आ गई,
लगता है – जैसे,
लहर के छोटे से गीत–गाते तरल क्षण में
आकाश की सारी विभूति–
घर–बैठे ही पास आ गई।" [2]

तरुणाई निराश होना नही जानती। 'इन्सानी सवेरा तो आयेगा ही'। अगर इसके लिए आत्म–बलिदान भी करना पडे तो भी और अगर विद्रोह और क्रान्ति करनी पडे तो भी–

"कौरवी षडयन्त्रों के बीच–
आम सड़क से
किरणें बिखराता
इंसानी सवेरा तो आयेगा ही–
आयेगा ही!" [3]

वह किसी लाल झण्डे के नीचे खडे हो जाने की विवश भी नही है। वह उनके उस सवेदन का सहज और सात्त्विक परिणाम है जो वर्तमान की आपा–धापी, छीना–झपटी, व्यवस्था के छल और दिखावे, राजनेताओं के भ्रष्ट आचरण और दीन–दरिद्र के प्रति की गई उपेक्षा और अत्याचार के विरुद्ध मुट्ठी बाधकर खडा हो गया है। सहज, निर्मल, कोमल स्वभाव की ही यह परिणति है कि परिस्थिति की इस असहनीयता को वे किनारे खडे होकर देखते नही रह सकते। यो जीवन में उन्होंने 'नीम–मिसरी' के घोल को ही पथ्य बनाकर पीना सीखा है–

"शरीर नीरोग बनाए रखने को
मेरी माँ चबा लेती थी
कड़ुए नीम की ताजी ललाईदार मुलायम–मुलायम कोंपलें,

1 यह लो मेरे हस्ताक्षर देखोगे? देखना चाहोगे?', पृष्ठ 24
2 वही, 'रास आ गई', पृष्ठ 25
3 वही 'सवेरा तो आयेगा ही, पृष्ठ 9

मिसरी के साथ।
वसन्त ऋतु के आने पर
पीपल में कलावा बाँधने के दिनों में।" [1]

'फातिमा' के माध्यम से अपने देश का जो नक्शा उन्हे बेंध रहा है, उसकी पीडा जैसे उनके तन–मन–प्राण को पीडित कर रही है। उनका संवेदनशील मन उस विडम्बना को वडे सहज किन्तु सूक्ष्म व्यग्य से व्यक्त करता है–

"रुआँसी फातिमा गरारा लहराती कानों के बाले झुमाती,
गुस्से से चूल्हे में पानी डाल खड़ी हो गई।
जो काँटो की बाड़ के पास–
मियाँ की चाँद और दाढ़ी के देखते हुए सफेद बाल।
वल्लाह यह तो कुदरत ने आज की फज़र
कैसा कमाल नज्जारा बख्शा–
हू–बहू जैसे मेरे देश का नक्शा।" [2]

उनका संवेदनशील मन देश की विडम्बना को 'वळद भडकावनी' मे बडे सहज किन्तु सूक्ष्म व्यंग्य से व्यक्त करता है (राजस्थान मे बैल को बळद सस्कृत बलीवर्द भी कहते है।)–

"सब बैल भड़क उठते थे
सींग घुमा–पूँछ नचा, होकर रुद्र–डरावने
दर्शक–प्राण बचाने भाग छूटते थे।
भयानक नज्जारा हो उठता था।
–प्रदूषण युग में जैसे मानव–जीवन
या मेरे महान प्रजातांत्रिक देश का संसद भवन।" [3]

अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मनुष्य की वडी और प्रकृत स्वतन्त्रता है। उसे पा लेना और पाकर बनाये रखना न डरे हुए आदमी का काम है, न दो–टूक बात को अभिव्यक्ति के नये और विचित्र कौशलो मे उलझा देने वाले सर्जक का। सर्जना का क्षण तो वह है कि जैसे बिजली का करैट पास हो जाय और जडता में भी एक थरथराहट पैदा कर दे–

"न जाने कौन–सा करैंट छू जाता है
मुझ माटी के लौंदे को!
सर्जन–क्षण में।" [4]

यह सर्जना का ही क्षण है जिसमे कवि न केवल अपने अवरोधों को समाप्त कर देता है बल्कि वही वह, वह आवाज भी उठा इसी क्षण मे कवि बौद्धिकों और कलाकारो को ललकारता है और स्वय 'विरोधी पक्ष मे' खडा हो कर जीवन–सत्य और तथ्य को निर्भीकतापूर्वक कहने और दूसरो तक पहुँचाने के लिए सन्नद्ध हो जाता है–

"भोटा न हो जाऊँ, धारदार रहूँ
पहाड़ी झरने का सा झलमलाता बहूँ

---

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'नीम–मिसरी', पृष्ठ 12–13
2 वही, 'फातिमा', पृष्ठ 40
3 वही, 'बळद भडकावनी', पृष्ठ 77
4 वही, सर्जन क्षण में, पृष्ठ 55

कौंधती, कड़कड़ाती बिजली–सा
जीवन का सत्य, और तथ्य कहूँ
रहूँ अपने कर्तव्य में दक्ष में;
रहूँगा मैं तो विरोधी पक्ष में।" [1]

कवि के संस्कारी मन ने आज के बौने मानव की लघुता को देखा और स्वीकारा है। 'आदमी का चेहरा', 'खून की शिनाख्त', 'डर लागे', 'क्या, सचमुच?', 'कैसी भूल!', 'हर–हर', 'अणु–अणु में विद्रोह', 'हॉसी आवे', 'इत्ता–इत्ता' कविताओं में मानव की क्षमता–महिमा की सीमाओं का, उसकी लघुता का, उसकी क्षुद्रता का– सभी का प्रमाणिक वर्णन है। 'महासागरीय चेहरा कोलाज' कविता मे भारतीय परिवारो का महानगरो के संत्रास और विडम्बनाओ को अकित करती है–

"जाड़ो में ठिठुरते, बिछौने में
अनचाहे– आये मांस के कलूटे लोथड़े–बच्चों के
पाँवों की खेंचगखेंच के तनाव से
फटने–फटने को हुए झिरझिरे कम्बल सा–
यह महानगरीय दफ्तरी चेहरा!
साइंटिफिक चाँद के उबड़–खाबड़
चट्टानी जुगराफिया सा
यह, महानगरीय दफ्तरी चेहरा!" [2]

ऐसा कॉटो भरा रास्ता चुनने का मतलब ऐशो–आराम की जिन्दगी गुजारना नही, मालपुए उडाना नहीं, समझौते का रास्ता अख्तियार करना नही, वल्कि अवाम की खुशहाली के लिए जीना और मरना, मानवीय उसूलो और जीवन–मूल्यो के लिए अपने को होम करना है–

"जीवन के अँधेरों से लड़ा–
अस्तित्व का एक रंग–बिरंगा उत्सव मना बड़ा।
जीवन की लाली के लिए
रस और हरियाली के लिए
आदमी की खुशहाली के लिए
ठेठ अन्दर–बाहर निरन्तर रहा अड़ा।
लड़ा–झगड़ा।" [3]

विरोध पक्ष मे खडा होने का अर्थ समग्र मानवीय मगल से है, अपना मगल उससे परे नहीं है। इसलिए उनके जीवन की लाली भी आदमी की खुशहाली से जुडी है। 'तरुण' ने विरोध पक्ष मे खडे होकर यह लडाई लडी है कलम की तलवार से, शब्दो के अस्त्र से और शब्दास्त्र से तैयार हुए है निजी और सामाजिक जीवन के कारखाने में। उनके शब्दास्त्रों को मुख्य प्रयोजन है मनुष्यता की रक्षा करना–

"हथौड़े से कुट–पिट कर, साँचे में कस–खिच कर
ढला जा रहा है मेरे प्राणों का संवेदना तार–

1 यह लो मेरे हस्ताक्षर 'विरोधी पक्ष में, पृष्ठ 92.
2 वही, 'महानगरीय चेहरा कोलाज', पृष्ठ 46
3 वही, 'लडा', पृष्ठ 93

उठेगी–उठेगी जिससे
मानव–मन की कोई गहरी–मीठी झंकार।
शब्द, अर्थ, लय, ध्वनि, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार–
हो गये हैं मेरा 'शब्द' बनाने को
छैनी, हथौड़ा, रंधा, आरी धारदार।
देखो न, शब्द में उतर रहा है चिदाकाश
लिए ब्रह्माण्डों का झलमलाता प्रकाश।" [1]

इन शब्दास्त्रों का एक प्रयोजन और है– मनुष्यता की हत्या करने वाले, सवेदन शून्य अमीर लोगों की मोटी चमडी को उधेडना और उनके असली चेहरे को सामने लाना, क्योकि अमीर–गरीब की खाईयॉ उन्होंने ही बनाई हैं–

"जीवन–तमस के गैंडो की खाल को फाड़ना है
अमीरी रेशमी लबादों के नीचे से
टाटों को उघाड़ना है।" [2]

व्यवस्था इतनी विकट हो चुकी है कि 'तरुण' को उस पर बार–बार क्रोध आता है और झुंझलाहट होती है। इसलिए वे 'निराला' की 'बादल राग' कविता की तरह ध्वंस की कामना करते हैं। पर यह ध्वंस ध्वंस के लिए नहीं है, बल्कि उसके मूल मे मनुष्य की मुक्ति की आकाक्षा है, नई मनुष्यता के जन्म की उम्मीद है–

"क्रान्ति की प्रचण्ड ठोकर से
तोड़ दो व्यवस्था के इस बर्फ की जड़ चट्टान को–
जिसमें कि मनुष्यता का
सनातन स्वर चिर बन्दी पड़ा है–लुठित।
x x x x x x
तमोमयी सत्ता की, व्यवस्था की
ध्वंस के लिए आज मेरी पूरी स्वीकृति है–
*यह लो मेरे हस्ताक्षर *।"* [3]

(*इस कविता–सग्रह का शीर्षक सन् 1972 में लिखित, तथा कवि 'तरुण' के पूर्व–प्रकाशित कविता–संग्रह 'ऑधी और चॉदनी' 1975 मे सकलित (यहॉ पुनर्प्रस्तुत) कविता 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' की प्रेरणा से रखा गया है।)

'तरुण' की कविता शब्दास्त्रो का एक प्रयोजन और भी है– साधारण जनता की दुर्दशा का चित्रण करना, उनको अपनी वास्तविक स्थिति का बोध कराना, शत्रुओ की चाल के प्रति उन्हें सचेत करना और उनकी लडाकू शक्ति को प्रोत्साहित करना–

"भुलावों की भुलावों में रहना
बहता चलेगा, सत्ता का भरोसा करता चलेगा आदमी
क्या यों ही सब कुछ चलता रहेगा।" [4]

भारतीय लोकतन्त्र की विद्रूपता ने यहॉ के मनुष्य को बहुत बुरी तरह से प्रभावित किया है। आज की व्यवस्था के

---

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'शब्द बन रहा है–क्रान्ति गीत का', पृष्ठ 91
2 वही, 'धीरज रखो, हे मन', पृष्ठ 88
3 वही, 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 6
4 वही, 'भुलावे ही भुलावे मे', पृष्ठ 61

बीच आदमी पगु और नपुसक बनने के लिए अभिशप्त है। अब प्रजातन्त्र का अर्थ एक बडा झूठ है और उसमे साधारण आदमी की भागीदारी की कोई अर्थवता नही रह गई है–

"हम बने हैं–
भाँत–भाँत के बेशकीमती प्रजातन्त्री नज्जारों के बीच
मुँह में थूँक घोटते–
देखते रहने को–
टुकुर–टुकुर।" [1]

नवे दशक से लेकर अब तक की स्थितियाँ इतनी विसगत हो गई है कि उनके बीच आदमी एक पैरोडी बनकर रह गया है। आधुनिक मानव जीवन की सबसे बडी विडम्बना यही है। कुछ भी सही सलामत, दुरुस्त और सन्तोषप्रद्र नहीं है–

"हर एक सिर पर यहाँ एक जोकर कैप और वेदर कॉक
हर चेहरे पर एक मुखौटा
हर मुख का एक भोंपू
हर बगल में एक बैसाखी, हर कमर में क्षुद्रघंटिका" [2]

असल में आदमी आदमी नही रह गया है। सम्प्रदायवाद और आतंकवाद ने मनुष्य की इस विडम्बना को गहरे भय और सत्रास में बदल दिया है। इनके कारण कदम–कदम पर खतरे बढ गये हैं और मनुष्यता का कोई मार्ग निरापद नहीं रह गया है। 'तरुण' की इस कविता मे मुक्तिबोध की तरह 'कहाँ जाऊँ, क्या करूँ', एक विराट् मानवीय ट्रैजडी तैरती है। व्यवस्था के बीच आज के मनुष्य की बेचारगी उसे और सघन करती है–

"पर किधर से जाऊँ?
घर से उतरते ही
जीने में मकड़ी के जाले
चौराहे पर मन्दिर–मस्जिद
और आगे कैंचीदार हावड़ा के पुल
किधर होकर जाऊँ कि
मानव के होठ की खोई मुस्कान लाऊँ।" [3]

समय इतना खौफनाक बन चुका है कि आदमी कही भी सुरक्षित नही है। न तो घर के भीतर, न तो घर के बाहर। घर कब जलकर राख हो जाये, कब खून हो जाय, कहना मुश्किल है। इस प्रदूषित वातावरण में सब कुछ सम्भव है। घर और जीवन की अर्थवत्ता खत्म होती जा रही है। कारण कि उनसे जुडे सपने टूटते जा रहे हैं। असुरक्षा–बोध (डर) आज के मनुष्य के अस्तित्त्व का अपरिहार्य हिस्सा बन चुका है–

"इतना बड़ा संसार
शस्त्र, सुरक्षा, सुदृढ़ इतने वैधानिक संभार,
इतनी रोशनी, इतना ज्ञान
कानून, बारीक संविधान

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'टुकुर–टुकुर', पृष्ठ 13
2 वही, 'हर, हर', पृष्ठ 17
3 वही, जड दूँ एक मुस्कान', पृष्ठ 14

मूर्ख! फिर भी मैं डरता हूँ
अपने ही कपड़ों की सलवट की आवाज से डरता हूँ।" [1]

ऐसे भयानक वातावरण में अपने सुरक्षा–कवच के भीतर रहने के लिए आदमी विवश है। उसकी जिन्दगी घोंघें से भी बदतर हो गई है। दूसरे के सुख–दु.ख से उसका कोई वास्ता नहीं नहीं रह गया है। सोफिस्टकेटेड जिन्दगी गुजारने वाला शहरी मध्यवर्ग इस यत्रणा का सवसे अधिक शिकार है–

"आग–लगे जंगल के बीच–
अपने काँच–महल में, भीतर से कुण्डी लगा,
पत्थर की बाहरी मारों से
अपने को बचाते से–
हम!
अरे, हाँ हम!" [2]

इस विषाक्त वातावरण ने मनुष्य की सवेदनशीलता को बहुत दूर तक प्रभावित किया है। उसके चलते मनुष्य की अर्थवत्ता 'वही मनुष्य है जो मनुष्य के लिए मरे' समाप्त होती जा रही है। इस माहौल मे अपने से बाहर का दु:ख–दर्द हमें परेशान नहीं करता। यह आज के मनुष्य की नियति है। यह मन:स्थिति मूल्य और सस्कृति के लिए भी बहुत घातक सिद्ध हुई है। 'तरुण' की यह सवालिया मुद्रा मनुष्य की इसी अमानवीय स्थिति की ओर इशारा करती है–

"बर्फ की चट्टान–सा, चिकना और सपाट;
इस पर उग नहीं सकेगी अब
संवेदना की कोई भी हरी चिकनी, पत्ती, घास।
रह गया है क्या आदमी
अब निरा खल्वाट?" [3]

'तरुण' इन भयावह स्थितियों से डरते अवश्य है, पर भागते नहीं हैं। वे उनका डटकर और हॅसते हुए सामना करना चाहते है। दरअसल 'दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना' । इसीलिए उन्हें हँसी भी आती है–

"अपनी ही आवाज से डरता हूँ, साँस से डरता हूँ
और फिर खिलखिला भी पड़ता हूँ।
डर कर तो घिग्घी–बँधा भाग जाना चाहिये न मुझे?
किसी अँधेरी आड़ में, घनी ओट में
पर मैं बेशरम–सा खड़ा–खड़ा हँसता रहता हूँ।" [4]

इस बुरी हालत मे भी वे मनुष्यता की आकांक्षा से अपना सम्बन्ध बनाये रखते है। 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' में प्रकृति के विविध रग–रूपो के प्रति ससक्ति और सौन्दर्य एव प्रणय–भावना की अवस्थिति के अतिरिक्त जीवन के उदात्त मूल्यो के प्रति वैसा ही उद्दाम भावावेग लक्षित होता है जैसा उनकी प्रारम्भिक कविताओ में अभिव्यक्त होता रहा है। कैनवास पर किसी चित्रकार द्वारा फैलाये गये हल्के–गहरे रगो के बीच से उभरता 'धूप का टुकडा' अपनी उजास और बेफिक्री से जितना सुकून देता है उतना ही उस चित्र मे से

---

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'डर लागे', पृष्ठ 31
2 वही, 'हम!', पृष्ठ 18
3 वही, 'क्या सचमुच', पृष्ठ 35–36
4 वही, 'डर लागे', पृष्ठ 32

उझकता–सा नारी–चित्र उस दृश्य को रूप–सौन्दर्य के सयोग से वैभववान बनाता है–

"क्या बताऊँ यार–
आज सवेरे
हमारे घर के सामने की एक छत पर मुँडेर पर
पुरानी काई–घास से सँवलायी
एक नाचीज़ धूप का फिसलता सा सिन्दूरी टुकड़ा
–सुन्दरी की मलमली हँसी–सा
–चिकनी गोरी कलाईयों पर फैली
चूड़ी की आभा–सा बिछलता।
पसरा पड़ा रहा, हल्का–सा, मौन, स्वल्प, कुछ देर।" [1]

जैसे 'जड दूँ एक मुस्कान' माध्यम से जो दृश्यपट बुना गया है उसमे मुन्ना न केवल उपमान–स्थानीय बन गया है बल्कि ऊँखल और माखन–लिपटे मुँह के निर्देश से अतीत मे बाल–कृष्ण के जीवन के घटना–प्रसग से भी जुड गया है–

"ऊँखल से बँधे
माखन मुँह पर लपेटे– भाग छूटते से मुन्ना जैसा–
चाँद पर बिछ–फैल गया है
काले बादल का एक टुकड़ा।
मोटी मारी मृगछाला–सा
पर– इससे क्या?
मुस्कान तो छनकर फूट ही आई किनारे पर
चाँदी की जड़ाऊँ रेखा–सी।" [2]

इसी मुस्कान को कवि आदमी के चेहरे पर लाना चाहता था परन्तु वह चेहरा आज देखने में विकृत हो गया है–

"पर कैसी भूल, कैसी लापरवाही–
कि देखने लायक तो छूट ही गया था अब तक–
आदमी का चेहरा–
ग्रंथिल, घना, बीहड़, गुंजान।" [3]

इसी प्रकार 'आओ, हे धूप' कविता मे ग्रहस्थी के रागात्मक सम्बन्धों का प्रकृति में वह अनूठा आरोपण किया गया है कि अपनी माधुरी मे वह अनूठा है, मनमोहक है। मुख्यत. दृश्य तथा स्पर्श्य बिम्बों और झिलमिल रगों की योजना में कवि का मन खूब रमता है। देखने से कही अधिक यह चित्र अनुभव ही करने योग्य है–

"अहा धूप
प्यारी–प्यारी धूप
केसरी धूप
मदँरी–मदँरी धूप

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'धूप का टुकडा', पृष्ठ 42
2 वही, 'जड दूँ एक मुस्कान', पृष्ठ 14
3 वही 'कैसी भूल', पृष्ठ 15

अपने पहले जाये मुन्ना को निहारती धूप
ममतामयी माँ की नजर–सी धूप!" [1]

लेकिन ऐसा नही है कि प्रकृति 'तरुण' की कविताओं मे केवल रूपवती, मृदुल, कोमल–स्नेहिल बनकर ही अवतरित हुई हो, जीवन और परिवेश के ताप मे, बिगडे बदमिजाज माहौल मे वह खिझाती भी है, विरोधी भाव भी पैदा करती है। अतीत में शरद का चॉद विरहिणियों को डराता, चिढाता और क्षुब्ध करता था। आज का कवि अपने चारों ओर के वातावरण से परेशान है। उसे ऐसे मे धरती पर अपने वैभव को भरपूर बिखेरता–लुटाता 'शरद का चॉद' बडा बेशरम लगता है–

"बेशर्मी की हद है कि ऐसे में भी
चमके शरद का चाँद!
–यह रंगीला, क्या मिटाएगा धरती की सड़ांध!
आया है जले पर नमक छिड़कने,
बेसुरा राग अलापने, मखौल करने!
लुढ़का कर धरती पर
बर्फ, चाँदी, दूध, शहद से भरे मटके–
करले, करले यह शरद का चाँद भी
अपने लटके–लटके।" [2]

अभी तो उसके सामने महानगरीय जीवन के अनेक चेहरे है और अपना निजत्व है। अपने अस्तित्व की पहचान अभी बाकी है। 'मै कहॉ हूँ' की प्रश्न–मुद्रा मे खोया वह इसीलिए पूछता है–

"करोड़ों नीहारिकाओं और ब्रह्माण्डों की सृष्टि
अकूल–तरंगायित अछोर मानव–जीवन!
युग–युगान्तरों की उद्दाम लहरों वाला अनन्त काल!
–विश्व, जीवन और काल का
इतना बड़ा एटलस
अरे, बोलो, बोलो– उसमें मैं कहाँ हूँ?" [3]

अपने अनस्तित्व को अस्तित्व के अहसास मे बदलने के लिए स्थितियो से जूझता वह अनुभव करता है कि डोर उसके हाथ से छूट रही है, किसी तरह उसे अपना अधिकार तो पाना ही है–

"और मेरे जीवन के–ले–देकर क्षण कुल चार
बस– इस सीमा में ही
क्यों न हो मुझे अपना निजी स्वर्ग
बसाने का अधिकार!" [4]

जीवन में सृजन, सौन्दर्य और प्रणय से विरक्त होकर मृत्यु, विनाश और अन्धकार के प्रति समर्पित हो जाने वाला कोई कवि क्या यह उद्‌गार व्यक्त कर सकता है?–

"सवेरा तो रोज ही आता है–

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर 'आओ हे धूप', पृष्ठ 41–42
2 वही 'शरद–पूर्णिमा–शरद का चॉद', पृष्ठ 90
3 वही, मै कहॉ हूँ, पृष्ठ 64–65
4 वही, 'मेरा अपना', पृष्ठ 65

पर आज कुछ खास ही अच्छा लग रहा था।" [1]

जीवन की इस साध्य वेला मे कवि के मन मे एक यही तो सबसे बडा सन्तोष है कि वह कभी प्रतिकूलताओ के प्रहार से परास्त नही हुआ और जीवन भर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अविरत सघर्ष करता रहा–

"किसी दूर चमकते तारे तारे पर टकटकी बांधे
मैं जीवन की एक लम्बी लड़त लड़ा
संघर्ष रहा बड़ा तगड़ा!" [2]

अगर यह मनुपुत्र अधकार के विरुद्ध लडता नही तो फिर अपने को 'सूर्य का वशधर' कैसे साबित कर सकता था? कोई आश्चर्य नही कि 'तरुण' के मन में जो मानव–प्रतिमा प्रतिष्ठित है वह किसी लस्त–पस्त अस्थि–पजर की नहीं, बल्कि उस 'अकाल–पुरुष' की है जो–

"आदिम अँधेरों में से
स्वर्ण तीरों की तरह छुटा–
फुंकारता
लपटें उछालता
रोशनी की जय यात्रा पर निकला
यह अमर अकाल पुरुष!" [3]

'तरुण' ने कभी अन्याय के प्रति आक्रोशवश ध्वस के घोषणा–पत्र पर अपने हस्ताक्षर भले ही कर दिये हो, परन्तु आलोच्य–सग्रह की अधिकांश कविताएँ जीवन की महत्ता, सार्थकता और सोद्देश्यता के प्रति आस्था से आप्लावित है। उसकी ध्वंस–कामना के मूल में भी विश्व–व्यवस्था के किसी अधिक न्यायोचित आधार पर नव–निर्माण की मगल कामना छिपी हुई है। वह निरन्तर लडता रहा है कि अन्तत–

"आकाश अब साफ हो चला है
धूप निकल गई है मद्दिम–मद्दिम रोशनी वाली" [4]

यह सोचकर कि उसका चित्त विचलित हो जाता है. 'निगल जायेगा, डकार जायेगा/अंधेरा/मेरे सब सपने।' मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए भी व्यक्ति अपनी अस्तित्वहीनता की आकांक्षा को यथासंभव नकारना ही चाहता है। संसार में समस्त शौर्य–प्रदर्शन, कला–सृजन और आध्यात्म–साधना के मूल मे मरणशीलता पर जीवन की अमरता का ध्वज फहराने की प्रेरणा ही काम करती हैं ससार में परिसमाप्ति को मनुष्य कभी सहज भाव से स्वीकार नही कर पाता–

"कहाँ दर्ज रहेगा, कौन गवाही देख देगा कि
मैं भी कभी इस विराट संगम पर आया था,
जन्म–जन्मातरों की यात्रा में" [5]

'तरुण' की जैसी ललक प्रकृति के विराट् रूपो–सागर, आकाश–के प्रति है वैसी ही धरती के विविध रूप रगो– नदी, झरने, जगल–पहाड–घाटी, हरियाली–मरुस्थल आदि– के प्रति है। उल्लेखनीय बात यह है कि वे प्रकृति के उबड–खाबड रूपो मे भी

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'किचन की खुशबु', पृष्ठ 51
2 वही, 'लडा', पृष्ठ 94
3 वही, 'जय यात्री', पृष्ठ 21
4 वही, 'गुलहल का पेड–बारिश के बाद', पृष्ठ 44
5 वही, 'ठहरो, जरा हाजिरी लगवा चलूँ', पृष्ठ 68

सौन्दर्य का दर्शन कर लेते है। 'चौडी छाती की रागिनी' कविता मे पहाडी झरने की रागिनी इतनी व्यापक हो जाती है कि वह अपने स्वर मे आज के सघर्षशील, थके हारे, दिशा शून्य आदमी की पीडा को समेट लेती है–

"लगता है कोई आज का भीष्म पितामह
घावों वाला सांगा
वहाँ अंधा होकर गा रहा है–
मर्दानी चौड़ी छाती वाली रागिनी में।
चेहरा जिसका चिकनी काली माटी वाले
नये सौंधाए हल–जुते खेत की धारियों सी
झुर्रियों वाला होगा।
खुरदरी ऊटपटाँग पहाड़ी चढ़ाइयों का बनजारा
या, रेत के टीबों में, लू–धूप में
ऊँटों पर या पैदल मीलों चला होगा।" [1]

खण्डेलवाल जी को प्रकृति से बेहद प्रेम है, बावजूद इसके उनके रचनात्मक सवदेना का मुख्य विषय साधारण मनुष्य ही है। दरअसल छायावाद के गहरे प्रभाव के कारण उनकी प्रारम्भिक दौर की कविताओं में प्रकृति की ओर विशेष झुकाव था, पर आधुनिक जीवन की दुर्दशा से प्रकृति–सौन्दर्य का यह जादू टूट गया। 'फूलो की झोली' कविता सुबह पर लिखी गई एक खूबसूरत कविता है। वह निराला की 'सध्या–सुन्दरी' कविता की याद पूरक रूप मे तरोताजा करती है–

"मंदिर की सफेद संगमरमरी समतल चिकनी–
सीढ़ियों पर,
चन्दनवर्णी कमलचरणी कज्जलकेशिनी मुस्कानवती
एक पुजारिनी
भोर की लाली में
चढ़ रही है, काँधे पूजा का कलईदार झलमल् थाल लिए।
जरी की साड़ी के परदर्शी आँचल की झोली में
चढ़ावे के ओस–नम फूल–कलियाँ हैं भरे–
लाल, पीले, चम्पई, दूधिया, तोतापंखी;
आँचल में से रंगीन आभा छितराते, सुथरे–सुथरे।" [2]

डॉ0 मूलचन्द सेठिया 'तरुण' के सृजन–यात्रा के बारे में वर्णन किया है– ***"काल की करालता और मृत्यु की अनिवार्यता को चुनौती देने वाली 'तरुण' की ये कविताएँ भाव–बोध और अभिव्यक्ति की उभय दृष्टियों से उनकी अन्यतम उपलब्धियाँ हैं। इन्हें विशेष रूप से लक्षित और मूल्यांकित किया जाना चाहिये।"*** [71]

'तरुण' को बाहरी जिन्दगी की तरह भीतरी जिन्दगी से बहुत लगाव है। उन्होंने इस काव्य–संग्रह में 'पत्नी–प्रेम' पर कुछेक अच्छी कविताएँ लिखी है जो हमे प्रसाद, पन्त, निराला, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, शमशेर, रघुवीर सहाय आदि की नारी और पत्नी पर लिखी गई कविताओं की याद दिलाती है। उनकी पत्नी सम्बन्धी कविताओ मे नागार्जुन की तरह 'यह तुम थीं', 'सिन्दूर तिलकित भाल' या फिर त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल जैसी भीतरी ऊष्मा है जो पति के जीवन को रोशनी और ऊर्जा से भर देती है और

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'चौडी छाती की रागिनी', पृष्ठ 45
2 वही, 'फूलो की झोली', पृष्ठ 47

संघर्ष के क्षणों में भी जिन्दगी खूबसूरत लगने लगती है। पत्नी–प्रेम उनका आत्म–विस्तार करता हुआ उन्हे बाहरी जगत् से जोडता है। 'इस डारन वै फूल' कविता पत्नी के इसी पक्ष को सामने लाती है। यहाँ पत्नी–प्रेम और प्रकृति दोनों एक दूसरे से जुड कर विस्तार पाते हैं। त्रिलोचन ने प्रेम के इसी उदात्त रूप का दर्शन करने के बाद लिखा होगा– 'मुझे जगत–जीवन का प्रेमी, बना रहा है प्यार तुम्हारा'–

"कनखियों से झाँक उठे कुछ ही दिनों में
जीवन–चेतना के हरे–गुलाबी रोएँ।
प्राणों को तड़पाती जिजीविषा हो तो
कोई कैसे सोए!
देखते–ही–देखते आ ही गये
इन डारन, वै फूल!
आ–हा! हा!" [1]

'श्रीखण्ड' कविता में पत्नी 'तरुण' को लोक–संस्कृति से जोडती है। साथ ही कवि ने बडी खूबी से सत्वहीन एकेडेमिक पाठ्यक्रम और श्रीखण्ड में समानता बताते हुए पाठ्यक्रमो की असलियत बताई है–

"धीमे–धीमे
निकला जा रहा था आराम से–
जीवन का रंगारंग लोक–तत्व।
सारा सत्त्व
कुछ घंटों बाद खोला
निकल आया ठोस बम–भोला
निःसत्व, निखालिस, जीवन–सत्त्व–निचोड़ा।
जैसे पाठ्यक्रमीय लद्धड़, प्यारे एकेडेमिक लोथड़ा।
मैंने कहा पत्नी से–
मैडम, फटाफट–
बनाओ न श्रीखण्ड।" [2]

'किचन की खुश्बु' कविता उनके स्वकीया प्रेम की गहरी संवेदना से हमे जोडती है। पत्नी–प्रेम 'तरुण' की जिन्दगी को नये अर्थ और ताजगी से भर देता है। पर ऐसा दोनों के अनन्य प्रेम से ही सम्भव हो सका है। चढती नवम्बरी धूप के साथ किचन से पत्नी का खुश्बु बिखेरना सुबह का अर्थ तो बदल ही देता है दैनिक–जीवन को भी आनन्द से भर देता है–

"पश्मीने की–सी तरगरम नवम्बरी धूप–
जो काया को वहुत सुहा रही थी–
सहन में तिरछी हो, बिछ रही थी
चमकीली कारपैट की तरह।
सवेरा तो रोज ही आता है–
पर, आज कुछ खास ही अच्छा लग रहा था।" [3]

---

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'इन डारन, वै फूल', पृष्ठ 43
2 वही, 'श्रीखण्ड', पृष्ठ 35
3 वही, 'किचन की खुश्बू', पृष्ठ 51

'तरुण' के लिए पत्नी–प्रेम केवल जीवन का नही, बल्कि रचना का भी प्रेरक है। उनकी कविता की बुनावट मे कुछ सुनहरे धागे पत्नी के हैं। 'क्या पता!' ऐसी ही व्यक्तिगत, फिर भी सर्व–सामान्य की अपनी कविता है–

"तुम मेरे गीतों में, चुपचाप,
सुनहरी सिलकन धागे की तरह
गुँथी–बुनी जाती रहीं
–तुम्हें क्या पता?" [1]

निष्कर्ष रूप मे जीवन की यात्रा–बहाव और विस्तार– में और काव्य–सृजन मे दोनों जगह पत्नी–प्रेम की ऊष्मा 'तरुण' के साथ है।

'तरुण' को अपने जीवन के लम्बे सफर में साथ देने वाली छोटी से छोटी चीजो से काफी लगाव है। मसलन– 'टेबल क्लाथ' । वह उनका रहबर है। वह उनके लिए 'भावात्मक पाताली सत्त्व' का काढ़ा है, इसलिए मन के लिए काफी सेहतमंद हैं। पर काल पर किसका वश है? जैसे वह शरीर को जीर्ण कर रहा है वैसे ही टेबल–क्लाथ को, पर उसके प्रति 'तरुण' के प्रेम पर उसका वश कहाँ हैं–

"कितने फीके पड़ गये इसके धागे
कसूमल किशमिशी मेंहदिया धागे।
दत्तचित आँखों से– बिना पलक झँपे, महीन सुई से डिजायन में
कढ़ी होगी– इसकी चिड़ियाँ, पत्ते, फूल–फुलड़ियाँ!
कितना सेहतमंद है मन के लिए
इसका भावनात्मक पाताली सत्, इसका क्वाथ!" [2]

निजी जीवन का एक बहुत बडा सच बुढ़ापा है और सबसे बडा सच मृत्यु। दोनो जिन्दगी में पाने और खोने पर दृष्टिपात करने के लिए बाध्य करते है। बुढापे और उसके रीतेपन पर निराला की तरह (स्नेह निर्झर बह गया है/रेत त्यों तन रह गया हैं) 'तरुण' ने कुछ नायाब कविताएँ लिखी हैं। शरीर और इन्द्रियों की बेचारगी इस पीड़ा को सघन करती है–

"ध्यानमग्न, अन्तर्मुख, चोट खाया;
जीवन के चतुर्दिक से होकर बहरा
जैसे कभी सतारूढ़ रहे
किसी अब अपदस्थ का
लुढ़कता–सा अनुभूतियों भरा नीरव चेहरा
साँस निकलने के पहले।" [3]

उन्हे इस बात का सन्तोष है कि प्रकृति के अनमोल उपादानों–चाँदनी, धूप, बारिश, हरियाली आदि का उन्होने अपनी तबीयत के मुताबिक भरपूर उपयोग किया है। इसलिए उनके मन में किसी प्रकार की कुण्ठा नही है, बल्कि एक खुलापन है। यदि उनको बुढापा बचपन जैसा सुन्दर लगता है तो उसका राज उनके जीवन–दर्शन में छिपा है। समय के साथ अभिव्यक्ति का नया अदाज लेकर उपस्थिति हुई 'बचपन–बुढापा' कविता की ये पक्तियाँ अपने–आप मे अलग होकर भी कबीर की 'झीनी–झीनी बीनी चदरिया' के 'ज्यो की

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'क्या पता!', पृष्ठ 30
2 वही, 'टेबल क्लाथ', पृष्ठ 49
3 वही, 'कोई अपनी बात', पृष्ठ 63

त्यो घर' दिये जाने का स्मरण दिलाये बिना नही रहती–

"प्रकृति के सब मुफ्त अनमोल वरदानों का मैंने तबीयत भर
उपयोग किया
चाँदनी, धूप, आकाश, हरियाली– सभी का शुक्रिया
आँख, कान, नाक, त्वचा– प्रभु की मुफ्त इनायतों पर
मैंने जंग नहीं लगने दिया।
खुले खजाने दिया–
खुली छत, चौक, बरामदा, खिडकियाँ वाले हवादार–
मकान जैसा रक्खा मैंने अपनी आत्मा का घर–बार–
तो मैं सुन्दर क्यों न लगेगा?" [1]

उम्र की दहलीज पर 'तरुण' को मृत्यु का निरन्तर अहसास है। कभी यह अपने पक्ष में, कभी दोनों पक्षों में। यह एहसास दोनों के आपसी प्रेम को और प्रगाढ कर देता है। मृत्यु को वे एक दूसरे के आमने–सामने रखकर महसूस करते हैं। इससे वह और सघन हो उठती है। 'एक न एक दिन' (एक कवि का विदागीत) मृत्यु के बोध पर लिखी हुई बडी मार्मिक कविता है। वह 'तरुण' का केवल अपनी पत्नी से नहीं या उनकी पत्नी का केवल 'तरुण' से नही, बल्कि दोनों का दुनिया से विदा का गीत है–

"एक न एक दिन
जिस दिन मैं न रहूँगा– उसके दूसरे दिन
तुम सवेरे उठ कर– पलक खुलते ही
कलमलाते दीए–सी, कबूतरी–सी भड़भड़ाई
चारों ओर, अपनी सहज ढ़ीली गर्दन घुमा
इतने बड़े संसार में, नीरव–नीरव,
रीती–रीती–सी
देख रही होगी।
–कैसा लगेगा।
एक न एक दिन
जिस दिन तुम न रहोगी– उसके दूसरे दिन
सवेरे उठकर
गर्दन घुमाकर नीरव–नीरव
चारों ओर मैं देख रहा होऊँगा–
लम्बे–चौड़े संसार में–
न जाने, मुझे कैसा लगेगा!" [2]

मृत्यु भले ही सबसे बडा सच हो, पर आदमी आजीवन उसके खिलाफ जिन्दगी के लिए लडता है। मरते दम तक मृत्यु के सामने तन कर खड़े रहना और उसका सामना करना उससे भी बडा सच है। इस होड में उनकी बराबर कोशिश यही है कि मैं कुछ ऐसा कर जाऊँ कि काल भले ही मेरे अस्तित्व को मिटा दे पर मेरे किए को न मिटा सके। यही उनकी अमरता है, यही उनकी

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'मेरा अपना', पृष्ठ 66
2 वही, 'एक न एक दिन', पृष्ठ 70

विजय है। जुटाई हुई भौतिक चीजें– घरबार, धन–सम्पति–संग्रह सबको काल निगल जाता है। सपने को भी वह नही छोडता, पर जब वहाँ सपने रचना का अक्स ग्रहण कर लेते हैं तो कालातीत हो जाते है। मृत्युबोध होने के बावजूद 'तरुण' का सच है जिन्दगी, और उसके लिए संजोए गये सपने। इसलिए वे अपनी जिजीविषा की भूख को मिटने नहीं देते हैं और अमर होने के लिए उन्हें निरन्तर अपनी रचनाओं में रूपान्तरित करते रहते है।

भाषिक प्रयोग में कवि ने मुक्त भाव से अंग्रेजी के उन सभी शब्दों का प्रयोग किया है जो महानगरीय भाषा प्रवाह में आज रवां हो गये है–

"साइंटिफिक चाँद के ऊबड़–खाबड़
चट्टानी जुगराफिया सा
यह, महानगरीय दफ्तरी चेहरा!
आफिस टाइम की खचाखच–ठसाठस भरी" [1]

ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रति कवि का रूझान विलक्षण है। ये शब्द गति–त्वरा–आवेग–उद्वेग और उद्वेलन के अन्तर–बाह्य को बिम्बित करने मे पूर्ण समर्थ सिद्ध हुए हैं,– लौह–लक्कड़, धूल–धक्कड़, गलगलाते, फुफकारते, झलमलाते, कड़कड़ाना जैसे प्रयोगों की बहुतायत है।

प्रकृति का यह बिम्ब कवि चेतना और सृष्टि चेतना के आक्रोश, विद्रोह और झुझंलाहटों को व्यक्त करने में पूर्ण प्रभावी है–

"सावन भादों के मेघ–घुमड़नों की छाया में,
चारों ओर पहाड़ो से
हरहराती– दहाड़ती–उतरती
आवर्तों– विवर्तों में फुफकारतीं
ताबड़तोड़ प्रमदा, मटमैली जल धाराओं का
रोर भरा गर्जन तर्जनमय यह संगम ही मुझे प्रिय है–
जिसमें पहाड़ो की गेरुएँ, गंधक, शिलाचूर्ण
टूटे बहते चले आ रहे हैं।" [2]

'ची–च्वट्' कविता मे शब्द और उसकी ध्वनि के विविध आयामो का निरूपण बखूबी किया है– बिजली के खम्बों के तारों पर बैठे वन पाखियों की चींच्वट् में कवि ने विश्व मानव की अति सभ्य मानसिकताओ का बडा ही तीखा सटीक परन्तु सांकेतिक व्यंग्य किया है–

'तू हट ह्यूमैनिस्ट'
'तू हट कम्यूनिस्ट'
'मैं विशिष्ट'
'तू अशिष्ट'
'मैं वरिष्ठ'
'तू कनिष्ठ'

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'महानगरीय चेहरा कोलाज', पृष्ठ 46
2 वही, 'यह लो मेरे हस्ताक्षर', पृष्ठ 5

'हिष्ट,हिष्ट'

भाषा– एक सरल कभी क्लिष्ट।" [1]

'बह जाने दो' कविता में काव्याभिव्यक्ति का महत्त्व अंकित है। 'अनाभिव्यक्ति से कैसरी–बिगाड पैदा करने वाली' बताना कवि की काव्य–सम्बन्धी सोच है–

"अब छाती का सारा गाढ़ा जमाव
गलबह जाने दो–
गीतों में।
न जाने कैसा कैंसरी बिगाड़ पैदा कर देगा–
अनभिव्यक्त रहकर!" [2]

'सवेरा तो आयेगा ही' कविता के शब्द अपनी ध्वनियों में अतीत एवं वर्तमान की क्रूर–कोमल स्थितियों को उभारते है–

"सब कुछ रौंदता, कुचलता, लेवल करता
बिना शोर–शार मचाए
चमचमाता, मुस्कुराता, सुनहरा
सवेरा तो आयेगा ही
हरी, उपजाऊ, वर्षा की ताजा–जुती धरती की
दिलकश ठण्डी–मीठी रेशमी खुशबुएँ फैलाता।" [3]

इसी प्रकार कवि ने अनेक नवीन प्रतीको का निर्माण किया है– मधुरता और क्रूरता के बीच की मानसिकता के लिए कवि ने 'छिपकली–सी कटी पूँछ' का प्रतीक सृजा जो अपनी स्थिति की प्रत्येक छटपटाहट से सवेदना के आकुलता को व्यक्त कर रहा है। इसी प्रकार 'जलते तवे की बूंदों' में कवि ने अधी–आकांक्षा वाले भटकते मन को देखा है। इसी प्रकार अनेक नवप्रतीक रचे है कवि ने।

'यह लो मेरे हस्ताक्षर' काव्य संग्रह में कविताओं का रूपाकार, भाव और विचार, कविताओं वाला है। कविताओं के शीर्षक कविता के केन्द्र भाव के प्रतीक हैं तथा प्रथम उठान में कवि अपने आशय की पृष्ठभूमि तैयार करता हुआ प्रश्नों–भावो–विचारों को जगाता है। फिर द्वन्द्वों–सघर्षो मे से कविता के रस को आकार देता है और अन्तिम उठान में एक अस्मिता जगाता है।

अदम्य उत्साह, अमाप जिजीविषा, अद्भुत सहनशीलता और असीम अपनापन 'तरुण' की अपनी पहचान है। उनकी इन कविताओं को पढना अपने आप में असीम सुख का अनुभव करना है। इतने सारे जीवन–वैविध्य, अनमोल और उदग्र ऊर्जा तथा संस्कारवान जीवन–मूल्यों से युक्त भाषिक बहुआयामिता वाला यह सग्रह 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' उनकी हिन्दी साहित्य को एक विशेष देन है।

---

1 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' 'ची–च्वट', पृष्ठ 72
2 वही, 'बह जाने दो', पृष्ठ 11
3 वही, 'सवेरा तो आयेगा', पृष्ठ 9

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 अज्ञेय का मत , 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 30 से
2 डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त का मत, 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 30 से
3 डॉ0 अमर नाम द्विवेदी का मत, 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 32–33 से
4 (स) डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा 'कवि 'तरुण' का काव्य–ससार', पृष्ठ 72–73.
5 (स) डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा 'कवि 'तरुण' का काव्य–ससार', पृष्ठ 74–75
6 (स) डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा 'कवि 'तरुण' का काव्य–ससार', पृष्ठ 76
7 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'प्रथम किरण' के 'निवेदन' से
8 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 120
9 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'प्रथम किरण' के 'आशीर्वाद' से
10 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'प्रथम किरण' के 'निवेदन' से .
11 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'आधुनिक हिन्दी कविता मे प्रेम और सौन्दर्य', पृष्ठ 93–94
12 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 155
13 डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त · 'डॉ0 'तरुण' दृष्टि और सृष्टि', पृष्ठ 34
14 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 112
15 आ0 नन्द दुलारे वाजपेयी . 'नया साहित्य नये प्रश्न', पृष्ठ 211
16 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 155
17 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 154
18 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हिमाचला' के 'आभास' से
19 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत · 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 114
20 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 155
21 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 115
22 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'नव हिमाचला' की 'परिचायिकी' से
23 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 77
24 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'नव हिमाचला' की 'परिचायिकी' से
25 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'नव हिमाचला' की 'परिचायिकी' से
26 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 70
27 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'नव हिमाचला' की 'परिचायिकी' से
28 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'ऑधी और चॉदनी' की 'अपनी बात' से
29 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'ऑधी और चॉदनी' की 'अपनी बात' से
30 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' . 'ऑधी और चॉदनी' की 'अपनी बात' से
31 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत . 'कविवर 'तरुण' · सर्जन के चरण', पृष्ठ 28–29.
32 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 125
33 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 119
34 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 52–53
35 डॉ0 शान्तिस्वरूप गुप्त 'कवि 'तरुण' दृष्टि और सृष्टि', पृष्ठ 116
36 डॉ0 अजब सिह · 'आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियॉ', पृष्ठ 203
37 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 33
38 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 42
39 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 119
40 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 119
41 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 169
42 (स.) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 51
43 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 58,62
44 (स) डॉ0 सन्तोष कुमार तिवारी 'कवि 'तरुण' का काव्य सवेदना और शिल्प', पृष्ठ 175
45 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'तरुण–काव्य ग्रन्थावली' की 'कुछ अपनी बात' के पृष्ठ 30 से
46 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'अग्नि–सगीत' के फ्लैप से
47 (स) डॉ0 ओमानन्द रू0 सारस्वत 'कविवर 'तरुण' सर्जन के चरण', पृष्ठ 5
48 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' के 'पहले थोडा–सा यह' से
49 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' के 'पहले थोडा–सा यह' से
50 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' के 'पहले थोडा–सा यह' से
51 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' की 'परिचायिकी' से उद्धृत
52 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' की 'परिचायिकी' से उद्धृत
53 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' की 'परिचायिकी' से उद्धृत
54 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' की 'परिचायिकी' से उद्धृत
55 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' . 'हम शिल्पी सत्रास के' की 'परिचायिकी' से उद्धृत
56 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' की 'परिचायिकी' से उद्धृत
57 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'हम शिल्पी सत्रास के' की 'परिचायिकी' से उद्धृत
58 डॉ0 विजयेन्द्र स्नातक का मत, 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 62 से
59 डॉ0 शकरदयाल शर्मा का वक्तव्य, 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 61 से

60 डॉ0 शम्भुनाथ सिंह का मत, 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 62 से
61 डॉ0 शक्तिदान कविया का मत, 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 63 से
62 डॉ0 रामकुमार शर्मा का मत, 'अखण्ड काव्य यात्रा' के पृष्ठ 63 से
63 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' की 'भूमिका' के पृष्ठ 14 से
64 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' के फ्लैप से
65 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' के फ्लैप से
66 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'खूनी पुल पर से गुजरते हुए' के फ्लैप से
67 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' के फ्लैप से
68 (स) डॉ0 तपेश्वरनाथ . 'कवि 'तरुण' सर्जन के नये क्षितिज', पृष्ठ 33–34
69 (स) डॉ0 तपेश्वरनाथ 'कवि 'तरुण' सर्जन के नये क्षितिज', पृष्ठ 51
70 डॉ0 रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण' 'यह लो मेरे हस्ताक्षर' के फ्लैप से
71 (स) डॉ0 तपेश्वरनाथ 'कवि 'तरुण' सर्जन के नये क्षितिज', पृष्ठ 42,46